... Memorial Collection ... ation Bahulab Jammu

अठारह : अक्टूबर-दिसम्बर 2011

अक्सर

मानव संघर्ष की रचनात्मक अभिव्यक्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संकल्प

नहीं पार कर पाये
जीवन की नदिया
पता नहीं फँसा कहाँ
गाड़ी का पहिया

धक्कों से कब तलक
भरी नाव चलायें
फँसे मझधार में
हम किसको बुलायें

हमको ही करनी पार
तूफां की खाई
तभी जीत पाएंगे
अपनी लड़ाई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अक्सर

अठारह : अक्टूबर-दिसम्बर, 2011

मानव-संघर्ष की रचनात्मक अभिव्यक्ति

प्रधान सम्पादक
हेतु भारद्वाज

सम्पादक
गोविन्द माथुर
रमेश रावत
लक्ष्मी शर्मा

आवरण
पन्ने कुँवर बच्छावत

मूल्य
एक प्रति : 25 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये मात्र (व्यक्तिगत)
500 रुपये मात्र संस्थाओं के लिए

आजीवन सदस्य
1000 रुपये मात्र

संपादकीय कार्यालय
ए-243, त्रिवेणी नगर, गोपालपुरा बाईपास,
जयपुर-302 018 (राजस्थान)
दूरभाष : 0141-2760160, 94147-52039
09828885028 (गोविन्द माथुर) 09319009866 (रमेश रावत)
0141-2761245 (लक्ष्मी शर्मा)
ई-मेल : aksar.tramasik@gmail.com

अभिनवेश्वर और क्षमा कौल द्वारा यह पुस्तक सप्रेम भेंट

G.M. College of Education Raipur, Bantalab Jammu
Acc No. 4881
Dated 26.12.2023

मुद्रण
तरु ऑफसेट, एफ-77, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर
दूरभाष : 2503989, 98290-18087

'अक्सर' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादक तथा प्रकाशक की वैचारिक सहमति आवश्यक नहीं है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस अंक में

सम्पादकीय

मूल प्रश्न से कतराने का प्रयास : फिल्म आरक्षण 3

विचार

क्रांतिकारी दर्शन और प्रगतिवादी दृष्टिकोण का अभाव — गुरबचन सिंह 8

संवाद

हिन्दी आलोचना का मौजूदा/उत्तर आधुनिकतावाद... — मलय पानेरी 12

गरिमा के पुंज : — रामशरण जोशी 24

विमर्श

व्यवसायीकृत चिकित्सा और स्त्री-विमर्श... — उर्वशी शर्मा 29

स्त्री विमर्श, धर्म और महाभारत — नीकी चतुर्वेदी 38

आत्मनिवेदन : था — विजय वर्मा 45

कहानियाँ

छिद्मी — विजय 48

भेड़-भेड़िए — अरविन्द जैन 56

कविताएँ

तीन कविताएँ : शिवनारायण 61

सात कविताएँ : महेशचन्द्र पुनेठा 66

तीन कविताएँ : शशिभूषण बड़ोनी 71

पाँच कविताएँ : नंदकिशोर 74

तीन कविताएँ : श्रीरंग 78

पाँच कविताएँ : अजय अनुरागी 82

विवेचन

विस्थापन की त्रासदी और 'शिगाफ़' — नंद भारद्वाज 84

अनिवार्य शिक्षा कानून-शिक्षण का माध्यम — अरुण सेदवाल 91

रचना की आलोचनात्मक अर्थवत्ता — विवेक कुमार मिश्र 94

समकालीन कविता और सम्प्रेषण के प्रश्न — इन्दुशेखर तत्पुरुप 98

साहित्य में ठेकेदारी प्रथा — संदीप अवस्थी 102

कथोपकथन : प्रलेस का अंतर्द्वंद्व — गोविन्द माथुर 107

नाटक : मशालें — सुरेन्द्र अंचल 109

चिन्ता

लघु पत्रिका आंदोलन की पीड़ा : ज्ञानरंजन के पत्र — राजाराम भादू 114

व्यंग्य : साहित्य में माफिया विमर्श — विधि विग्रह 124

पुस्तक समीक्षा

अव्यवस्थित बदलाव की आलोचना — नंद चतुर्वेदी 127

शैलेय की कविता-यात्रा का दूसरा चरण — कपिलेश भोज 131

भावनाओं की सान्द्रता में उभरे महीन चित्र — रमेश खत्री 136

गोष्ठी प्रसंग : अज्ञेय का विशाल रचनाकर्म 140

पत्र-संवाद 141-144

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मूल प्रश्न से कतराने का प्रयास : फिल्म आरक्षण

'अक्सर' के पिछले अंक में अपने सम्पादकीय में मैंने प्रकाश झा की फिल्म 'आरक्षण' के बहाने देश में आरक्षण से उपजी स्थितियों पर अपनी बात कहने का प्रयास किया था और यही मेरा अभीष्ट भी था। किंतु श्री शिवरत्न थानवी, श्री राजाराम भादू (जिनके पत्र भी इस अंक में छपे हैं) आदि मित्रों का आग्रह रहा कि फिल्म पर भी चर्चा होनी चाहिए थी, क्योंकि प्रकाश झा ने फिल्म में भी उसी मुद्दे को उठाने का प्रयास किया था, जिसे मैंने अपने सम्पादकीय में विश्लेषित किया है। इस सम्पादकीय पर मुझे अनेक मित्रों ने फोन पर बधाइयों दीं कि मैंने बहुत संवेदनशील सवाल पर बहुत बेबाकी से लिखा है। वर्तमान स्थितियों में ऐसा लिखना साहसिक काम है। मैं यहाँ इन प्रतिष्ठित महानुभावों का नाम नहीं लेना चाहता, पर मुझे खुशी है कि मेरी बातों को इन लोगों ने सही संदर्भों में समझा है।

मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हमारे देश में सबसे कायर और अवसरवादी हमारा बुद्धिजीवी वर्ग रहा है। इस तरफ फोन पर भी मित्रों ने संकेत किया। यह किसी से छिपा नहीं है कि हमारे बुद्धिजीवी सच कहने से किस तरह कतराते हैं। मूल मुद्दों से कतराने की कला हमारे आचरण का अंग बन चुकी है। हिन्दी के चार बड़े कवियों की जन्मशती पर हमारे बड़े और निष्ठावान पंडितों ने जिस सतही ढंग से अपनी उत्सवधर्मिता प्रकट की है उसका परिणाम यह रहा कि हम घिसी-पिटी बातों को ही दोहराते रहे। यद्यपि अज्ञेय की खूब धूम रही तथापि अज्ञेय की चर्चा में अज्ञेय से ही कतराते रहे।

सच बात तो यह है कि प्रकाश झा अपनी फिल्म 'आरक्षण' में आरक्षण के सवाल से ही कतराते रहे। वे इस महत्त्वपूर्ण सवाल को अपनी फिल्म का केन्द्रीय बिन्दु नहीं बना पाये। माना यह एक ऐसा नाजुक मसला है जिस पर फिल्म बनाने के लिए बड़े साहस की आवश्यकता है। फिल्म एक कला माध्यम होने के साथ-साथ हमारी सामाजिक धारणाओं को प्रभावित करने वाला माध्यम भी है। मुझे इस माध्यम की तकनीकी जानकारी बहुत अधिक नहीं है तथापि जानता हूँ कि 'गर्म हवा', 'उड़ान', 'इकबाल', 'बोल' जैसी सार्थक फिल्में बहुत कम बजट में बनायी जा रही हैं। इतना ही नहीं, ये फिल्में बड़ी और भव्य फिल्मों के बीच अपनी हस्तक्षेप भरी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। 'उड़ान' फिल्म ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
व्यावसायिक सिनेमाई पुरस्कारों के बीच जिस तरह अपना स्थान बनाया उसने फिल्मी पंडितों को हतप्रभ किया है।

प्रकाश झा निश्चय ही एक सजग फिल्मकार हैं तथा वे अपनी हर फिल्म में किसी न किसी सामाजिक सवाल को केन्द्र में रखते हैं। वे इस माध्यम का उपयोग भी जानते हैं तथा उसकी कला की सीमाओं को भी समझते हैं। 'दामुल', 'मृत्युदंड', 'गंगाजल', 'अपहरण', 'राजनीति' आदि फिल्मों में उन्होंने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है पर मुझे यह कहने में भी संकोच नहीं है कि 'आरक्षण' फिल्म द्वारा अपनी फिल्मी यात्रा में वे आगे नहीं बढ़े हैं। मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि प्रकाश झा इस फिल्म में आरक्षण की मूल समस्या से अपने को बराबर बचाते रहे हैं। शायद वे इस सवाल की नजाकत को समझते थे तथा उसके दुष्परिणामों को भी। फिर भी इस फिल्म का पुरजोर विरोध हुआ। यह पहली बार था कि किसी फिल्म के निर्माता निर्देशक को अपनी टीम के साथ विभिन्न चैनलों, मंचों पर प्रस्तुत होकर अपनी फिल्म के पक्ष में सफाई देनी पड़ी हो। इस कार्य में उन्होंने अमिताभ बच्चन जैसे लोकप्रिय व्यक्तित्व का भी उपयोग किया।

इसमें संदेह नहीं कि इस फिल्म का विरोध काफी मुखर था तथा यह उन लोगों द्वारा किया गया जिन्हें लगता था कि फिल्म आरक्षण के खिलाफ है और इस व्यवस्था को समाप्त करने का संदेश देती है। जबकि फिल्म में ऐसा कुछ नहीं है, पर हमें फिल्म के इस विरोध के चरित्र को समझने का प्रयास करना चाहिए– माना संविधान ने समाज में समानता लाने के लिए आरक्षण की व्यवस्था एक सीमित समय के लिए की थी। स्वयं डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि आरक्षण न किसी समस्या का स्थायी हल है न यह कोई सदा चलने वाली व्यवस्था। असल बात तो समाज से गैरबराबरी मिटाने और जातिवाद को समाप्त करने की थी, पर क्या आरक्षण से हम इस दिशा में तनिक भी बढ़ पाये क्या इस बात पर बात नहीं होनी चाहिए? क्या इस व्यवस्था को समीक्षा ही नहीं होनी चाहिए? संवैधानिक अधिकार और जन्मसिद्ध अधिकार में क्या कोई अंतर नहीं होना चाहिए? हो यह रहा है कि यदि हम आरक्षण पर कोई भी सवाल उठायेंगे तो वह आरक्षण का विरोध ही माना जाएगा। यह कैसी अभिव्यक्ति की आजादी?

आरक्षण के पक्षधर यह भूल जाते हैं कि आरक्षण व्यवस्था हमारे समाज का एक स्वीकृत हिस्सा बन चुकी थी और इस ओर हमने ध्यान देना भी बंद कर दिया था। कांग्रेस के लिए आरक्षण सुरक्षित वोट बैंक था। किंतु जब विश्वनाथप्रसाद सिंह ने आनन–फानन में मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करने की घोषणा की तो आरक्षण का नया और भयावह रूप प्रकट हुआ। इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों को इस तथ्य पर गहराई से अध्ययन करना चाहिए कि मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने के बाद हमारे समाज में टूटन की प्रक्रिया क्यों तेज हुई? जातिवाद का संकीर्ण रूप क्योंकर हमारे ऊपर हावी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होता चला गया? यह आकस्मिक नहीं है कि अम्बेडकर के महत्व को हमने मंडल आयोग के लागू होने के बाद अधिक समझा। ऐसा क्यों हुआ कि जिस जातिवाद से मुक्ति के लिए संविधान बना था वही जातिवाद हमारी जीवन शैली का अभिन्न अंग बन गया और लोहिया आंदोलन से उपजे मुलायम सिंह यादव और लालू यादव जैसे लोग जातिवाद की खुली राजनीति करने लगे? सभी जातियों के अपने-अपने संगठन बन गये, उनके अपने-अपने महापुरुष और देवता खोजे जाने लगे। क्या यह अजीब नहीं था कि विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता जातियों के मंचों पर एक साथ जुटने लगे और अपनी-अपनी जातियों के उन्नयन की बात करने लगे? इस स्थिति का न किसी दल ने विरोध किया न सरकार ने और न बुद्धिजीवियों ने। सब अपनी शरण अपनी जाति में खोजने लगे। एक ओर हम इक्कीसवीं सदी की बात करते हैं और दूसरी ओर अपनी प्रगति को आदिम साधनों से सज्जित करना चाहते हैं। नतीजा यह हुआ कि आरक्षण पर बात करना उतना ही खतरनाक हो गया जितना साम्प्रदायिकता पर। हम सारे बुद्धिजीवी अपने को धर्मनिरपेक्ष सिद्ध करने के लिए मुसलमानों की हिमायत करते रहे, उसी तरह उनका दिखावटी दलित प्रेम भी केवल वाचिक स्तर पर मुखर होता गया। इसके विपरीत समाज में जातिवादी तत्व अपना विध्वंसक काम करते रहे।

इसमें संदेह नहीं कि प्रकाश झा ने 'आरक्षण' फिल्म में इन सारी स्थितियों पर अपनी राय देने का प्रयास किया है, किंतु कोई कारगर उपाय हमारे सामने नहीं रखा है। आरक्षण का विरोध करना ही पर्याप्त नहीं है उसका विकल्प सुझाना भी हमारा ही काम है। फिल्म में एक स्थल पर जरूर बहुत धीमे स्वर में विकल्प की बात की गयी है। प्रभाकर (अमिताभ) की पत्नी (कल्पना लाजमी) इस मुद्दे पर कहती है कि समाज से गैरबराबरी मिटाने का उपाय आरक्षण के स्थान पर निम्न वर्ग के लोगों का अधिकाधिक सुविधाएँ मुहैया कराना हो सकता है ताकि ये पूरी तैयारी के साथ प्रतियोगिताओं में सफल होने में सक्षम बन सकें। इस बात को कुछ संवादों में ही बिला दिया गया है। यह भी कोई अंतिम विकल्प नहीं है, पर हमें ऐसे विकल्पों की बात तो करनी चाहिए।

यह फिल्म न तो आरक्षण का कोई कारगर विकल्प सुझाती है न इस सवाल पर गम्भीर बहस का आगाज करती है। विरोध केवल इसलिए हुआ कि इसका नाम 'आरक्षण' था और कुछ लोगों को लगा कि उनके हितों पर यह फिल्म प्रहार कर सकती हे। सारे विरोध और सारी सफाइयों के बावजूद इस फिल्म को बहुत व्यापारिक सफलता नहीं मिल सकी, पर मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं कि इस फिल्म ने एक संवेदनशील मुद्दे पर बात करने का अवसर तो प्रदान किया ही। अब हम अपनी कायरता की खोल से नहीं निकल पाये तो बेचारे प्रकाश झा भी क्या करते?

यहाँ हम 'आरक्षण' फिल्म की विषय-वस्तु की भी चर्चा कर सकते हैं। सच बात तो यह है कि यह फिल्म प्रकाश झा ने आनंद कुमार के 'सुपरथर्टी' अभियान से प्रभावित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
होकर बनायी। फिल्म काफी बड़ा आखिरी हिस्सा उसी अभियान को समर्पित है। किंतु यह फिल्म हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की आर्थिकी और व्यावसायिकता की तल्ख व्याख्या करती है। हम किस तरह शिक्षा को एक व्यापार में बदल रहे हैं और शिक्षा बड़े-बड़े घरानों के हाथों प्रदूषित हो रही है इसका काफी विश्वसनीय और चिंताजनक विश्लेषण यह फिल्म करती है। इस फिल्म की मुख्य विषय-वस्तु आरक्षण न होकर शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियां ही हैं। किंतु विषय के ट्रीटमेंट में प्रकाश झा अपनी फिल्मी रूढ़ियों से मुक्त नहीं हो पाये हैं। हम अभी भी यही सोचते हैं कि हमारी सारी समस्याओं का निदान एक नायक कर सकता है और नायक भी अपनी लड़ाई को अकेला ही लड़ने का प्रयास करता है। प्रभाकर के किरदार में आदर्शवादी अमिताभ बराबर अकेले होते जाते हैं या वे स्वयं को अकेला करने का प्रयत्न करते हैं। वे अपने संघर्ष को सामूहिक बनाने की पहल नहीं करते। न वे अपनी पत्नी की मदद लेना चाहते हैं न बेटी की। वे अपने अभियान में सहायता करने का प्रस्ताव देने वाले सैफ और प्रतीक को भी लताड़ देते हैं। अंत में उन्हें उनकी सहायता लेनी ही पड़ती है। यह सब बहुत बनावटी लगने लगता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि फिल्म के नायक से सब कुछ उम्मीद करना हमारी अवतार-विश्वासी मानसिकता का परिणाम हो और अनजाने में हम व्यक्तिवाद को बढ़ावा दे रहे हों? अधिकांश फिल्मों में हम यह देखते हैं कि अन्याय के खिलाफ लड़ाई में नायक अकेला ही जूझता है। शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण सवाल पर फिल्म बनाते समय तो सामूहिकता को पूरा महत्व मिलना ही चाहिए, क्योंकि शिक्षा एकल कर्म नहीं है। आनंद कुमार की 'सुपरथर्टी' अथवा पारस सकलेचा की 'युवाम' जैसी संस्थाएं जो काम कर रही हैं उन पर हमें ध्यान देना चाहिए तथा उनके आधार पर शिक्षा में प्रयोग हों तो नये सामूहिक रास्ते निकल सकते हैं।

मैंने जो कुछ पिछले सम्पादकीय में लिखा, मैं उसी पर अपने आपको केन्द्रित रखना चाहता था। मेरी इच्छा समाज में चल रही आरक्षण व्यवस्था और उसके परिणामों पर बहस चलाने की थी। व्यक्तिगत रूप से मैं जो कुछ लिख रहा हूँ अपने विश्वास के आधार पर लिख रहा हूँ और उसके लिए मैं पूरी तरह उत्तरदायी हूँ। मैं गलत हो सकता हूँ पर एक लोकतंत्र के स्वतंत्र नागरिक के नाते मुझे अपनी बात कहने का हक तो है ही। इस बीच लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के 75वें अधिवेशन में प्रलेस के अध्यक्ष डॉ. नामवर सिंह ने जो बयान दिया वह वाकई बहुत खराब है तथा वह घनघोर जातिवादी है। इसीलिए उन्हें कहना पड़ रहा है उनके वक्तव्य का गलत अर्थ लगाया गया। यह भी तो एक चालाकी है कि पहले जो कुछ कहना हो कह जाओ और अगर उसका विरोध हो तो कह दो कि उनके कहने की गलत व्याख्या की गई। वे हमारे आम बुद्धिजीवी के प्रतिनिधि हैं इसलिए उनसे यही अपेक्षा थी, पर वीरेन्द्र यादव ने 'शुक्रवार' में अपनी जो पहली प्रतिक्रिया लिखी उसमें नामवर सिंह के वक्तव्य का उल्लेख करते हुए और-और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बातों पर तो चर्चा की पर नामवरजी पर कोई टिप्पणी नहीं की, क्या इसमें कोई चालाकी नहीं है? इसलिए हमें अपने बुद्धिजीवियों से बहुत सावधान रहना चाहिए, क्योंकि वे जो कह रहे हैं उस पर वे कायम रहेंगे यह जरूरी नहीं है।

मैं अब भी मानता हूँ कि आज हमारा समाज जिस टूटन की पीड़ा से गुजर रहा है उसमें आरक्षण के औचित्य/अनौचित्य पर बहस क्यों नहीं होनी चाहिए? आरक्षण की उपलब्धियों पर बात क्यों नहीं होनी चाहिए? आरक्षण व्यवस्था ने हमारे समाज में किस सीमा तक गैरबराबरी को मिटाया है और समानता का कितना माहौल बनाया है इस पर पुनर्विचार क्यों नहीं होना चाहिए? हमारे समाज में जातिवाद का इतना उग्र उभार क्यों है तथा इसमें आरक्षण की कितनी भूमिका है इस पर बहस क्यों नहीं होनी चाहिए?

ये कुछ सवाल हैं जो मेरे मानस को मथते रहते हैं। आप भी इनमें शामिल हों तो आपका स्वागत करूँगा।

पिछले दिनों 'रागदरबारी' जैसे कालजयी उपन्यास के लेखक श्रीलाल शुक्ल दिवंगत हो गये, यह हमारे लिए एक दुखद समाचार था। श्रीलाल शुक्ल असाधारण प्रतिभा के धनी कथाकार थे। 'रागदरबारी' का महत्व इस बात में उतना नहीं कि वे हमारे जीवन की विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य करते हैं, जितना उसकी उस भंगिमा में हैं, जिससे वे व्यंग्य करते हैं। शिल्प के स्तर पर शायद ही कोई ऐसा उपन्यास हो जिसे आप चाहे जहाँ से पढ़ना आरम्भ कर दें और चाहे जहाँ बंद कर दें। आपको एक पूर्णता का अनुभव होगा। इस दृष्टि से इस कृति पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। इस बीच प्रख्यात कवि तथा संवेदनशील कलमकार कुबेरदत्त का भी असामयिक निधन हो गया।

'अक्सर' परिवार श्रीलाल शुक्ल तथा कुबेरदत्त के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

हेतु भारद्वाज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्रांतिकारी दर्शन और प्रगतिवादी दृष्टिकोण का अभाव

● गुरबचन सिंह

● अनुवाद : तरसेम गुजराल

दुनिया भर में मनुष्य को कुदरत (प्रकृति)से अलग-थलग कर, मन को तन से विछिन्न कर और मानवीय चेतना को ऐतिहासिक चेतना से अलग कर, अपितु इसके उल्ट प्रकृति के साथ शत्रुता निभाने और अंतहीन मुनाफे के लोभवश, मानवीय लूट के आधार पर निर्मित-इन्सानी पक्ष से बिल्कुल शून्य-इस साम्राज्यवादी पूंजीवादी राज्य व्यवस्था ने आज पूरी मनुष्य जाति को तबाही के किनारे पर लाकर खड़ा कर दिया है। 'वैश्विक तपिश' के रूप में प्रगट हो रही प्राकृतिक वातावरण की तबाही किसी आने वाली प्रलय की आहट है। अहंकार और कल्पना के हवाई किलों में भटक रहा शासक वर्ग पूर्णत: मक्कार, वहशी,जालिम और उजड्ड है। यह वर्ग लोगों को लूट भी रहा है, पीट भी रहा है और अपने विरूद्ध एक जुट न होने के लिए, उनको विभाजित भी करता है। वह लोगों के मनों में राज्य की दहशत और एक-दूसरे के प्रति सन्देह बनाये रखने के लिए, उनका कत्लेआम करता भी है और करवाता भी है। वह लोगों को नियन्त्रण में रखने के लिए सदियों से आजमाये हुए चार चाणक्य नियम साम-दाम-दंड-भेद यानी-पुचकारो, खरीदो, पीटो, बाँटो और राज करो की नीतियों को बड़ी महारत से लागू कर रहा है। बहुसंख्यक आम लोगों को गुमराह करने के लिए उसके पास साम्राज्यवादी उपभोक्तावादी संस्कृतिक के शिकार, मनोरोगी पत्रकारों की एक पूरी फौज और लगभग समूचा मीडिया है। ये सारी बातें आज के समय का यथार्थ है।

यह भी एक सच है कि इतना कुछ होने के बावजूद सामाजिक और कुदरती नियमों के अनुसार लोग इस सब कुछ का विरोध करते रहे हैं, कर रहे हैं और करते रहेंगे। इस विरोध का स्वर कभी दबा हुआ और कभी मुखर होता है। कभी विचारों के स्तर पर होता है और कभी हथिहारों के स्तर पर। वे लोग आज भी मौजूद है जो अपने अकीदों की रक्षा अपना सिर देकर कर रहे हैं। यद्घ सवाल पैदा होता है कि आत्म बलिदानी और दृढ़ लोगों के, इस गली-सड़ी, जीर्ण, पुरानी, समाज-राज्य व्यवस्था को गिराने और एक नये मानवीय समाज के सृजन के, ये प्रयत्न सफल क्यों नहीं हो रहे? इसका एक मुख्य कारण प्रगतिवादी दृष्टिकोण और इन्कलाबी फलसफे का न होना है। इसके न होने से पुराने को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गिरा कर नये की सृजना नहीं की जा सकती। इन्कलाबी फलसफे, इन्कलाबी विचार धारा, इन्कलाबी राजनीति के बिना कोई इन्कलाब सफल नहीं हो सकता। प्रगतिशील मौलिक दृष्टिकोण, इन्कलाबी फलसफे और इन्कलाबी राजनीति की समझ के लिए ऐतिहासिक चेतना का होना बहुत जरूरी है।

विशेष तौर पर इस दौर में जब इतिहास में पहली बार मनुष्य जाति, कुदरत के नियमों का पालन करते हुए, मानवीय समाज को सचेत रूप में संगठित करने के योग्य हुई है, जबकि अब तक मनुष्य जाति आवेगमयी कुदरती शक्तियों एवं प्रबल सामाजिक शक्तियों की अधीनगी मान कर, अन्धेरे में हाथ-प्भव मारते हुए, अपनी 'जून' गुजार कर चली जाती रही है। इस प्रसंग में समाज को सचेत रूप में संगठित करने के लिए आपसी विचारधारात्मक संघर्ष की केन्द्रीय अहमियत है। क्योंकि विचारधारात्मक संघर्ष द्वारा ही अपने दृष्टिकोण और अपनी अनुभवी सोच को समझने, बदलने और बदली हुई सोच के अनुसार बहिर्मखी आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियों को समझा जा सकता है और तभी उनको बदलने के लिए उनके अनुसार अन्तर्मुखी इन्कलाबी शक्तियों को संगठित करने की योग्यता पैदा होती है। विचारों के इस युद्ध के बिना न तो किसी मसले के सभी पक्षों को समझा जा सकता है। विचारों के इस युद्ध के बिना न तो किसी मसले के सभी पक्षों को समझा जा सकता है और न ही उनका हल खोजा जा सकता है। आज की पेचीदा हो गई साम्राज्यवादी हकीकत में यह और भी जरूरी है। परन्तु वैश्विक कम्युनिस्ट लहर इस हकीकत से भटक गई प्रतीत होती है।

1971 के रूसी इन्कलाब से पहले पौनी सदी कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्ज ने इस ठोस दुनियावी हकीकत को समझने की कोशिश में विचारधारात्मक संघर्ष का नेतृत्व किया और अपने से पूर्व के और अपने समय के बहुत से विद्वानों के कुछ विचारों को अपनाया और कुछ का खण्डन कर एक दर्शन को जन्म दिया, जो समय की रूहानी, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों को जान लेने के योग्य था। परन्तु दुनिया भर के लोगों की बदकिस्मती यह रही कि प्रतिदिन बदलती और पेचीदा हो रही हकीकत का सामना करते रहने के लिए यह विचारधारात्मक बहस को रोकने की कोशिश की, जिसका परिणाम यह निकला कि साम्राज्यवादी-पूंजीपतियों के बीच तीखी गलाकाट आपसी प्रतियोगिता की वजह से, बड़ी तेजी से निरन्तर बदल रही सामाजिक हकीकत, उनकी सूझ का हिस्सा नहीं बनी रह गयी। धारणा यह बना दी गई कि क्रांतिकारी व्यवहार या अमल से हट कर की गई विचारधारात्मक बहस महज कागजी होकर रह जायेगी और इन्कलाबी व्यवहार का पैमाना अपनी-अपनी पार्टी के संगठनात्मक काम या सिर्फ हथियारबंद लामबंदी को ही बना लिया गया। यह पैमाना बहिर्मुखी ठोस हकीकत के बरअक्स है या नहीं, इसको मन से ही भुला दिया गया। यहाँ तक कि विचारधारात्मक संघर्ष को छोटा करने के लिए बौद्धिक बहसों को निरुत्साहित किया गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माओ-त्से-तुंङ्ग ने 'महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति' के दौरान बेशक विचारधारात्मक संघर्ष की अहमियत के सम्बंध में खूब जोर लगा कर प्रचारित किया, निमन्त्रण भी दिया, 'सौ फूलों को खिलने दो', 'सौ विचारों को भिड़ने दो'। परन्तु इसके बावजूद भी कम्युनिस्ट लहर इस अलामत से पीछा नहीं छुड़ा सकी। अब भी जब कहीं विचारधारात्मक संघर्ष की शुरूआत होती है, तब ही उसे सहृदय पक्षों की ओर से या तो महज 'किताबी ज्ञान,' कह कर उसकी उपेक्षा की जाती है या बिना किसी तर्क के इसका विरोध किया जाता है।

दिलचस्प बात यह है कि सभी कम्युनिस्ट पार्टियों के कार्यक्रम में हमारे देश की विशेषता 'बहु कौमी' मानी गई है। सभी कौमों की अपनी-अपनी बोलियाँ और अपनी अपनी संस्कृति है। फिर किसी कौम की बोली, संस्कृति, इतिहास और दर्शन सम्बंधी ठोस समझ की उपेक्षा करके उस कौम के लोगों का जमहूरी, समाजवादी या कम्यनिस्ट इन्कलाब के लिए कैसे तैयार किया जा सकता है, इस सवाल का जवाब किसी कम्युनिस्ट पार्टी के पास नहीं है। 'सोंठ की गाँठ' की तरह 'वर्ग संघर्ष' का अमूर्त शब्द इनके पास एक ऐसा नुस्खा है, नीम हकीमों की तरह, जिसे ये हर मसले पर लागू करने का दावा करते हैं। असल में यह कथित 'कम्युनिस्ट' 'मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त' की कहावत के अनुसार भारतीय हुकमरानों से भी इस देश की एकता-अखण्डता के बड़े पैरोकार है। जबकि इस देश के फैडरल ढाँचे का अस्तित्व ही इस हकीकत को स्वीकार करना है कि इस देश में रह रही अलग-अलग कौमों के लोगों की अपनी-अपनी रूहानी, भाषायी, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर विकसित करते हुए ही, अब तक की सबसे बड़ी और सबसे विकसित सामाजिक इकाई 'वैश्विक कम्युनिस्ट समाज' में शामिल होना है। प्रगतिशील वर्ग संघर्ष का यही उद्देश्य है।

विचारधारात्मक संघर्ष को कुंद करने के रूझान स्वस्थ और तर्कसगंत नहीं है। जरूरत इस बात की है कि प्रत्येक मसले पर विचारधारात्मक बहस को खुलने दिया जाये। दुनिया भर में बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। 19वीं सदी में पूंजीवाद के विकास के साथ पूरी चमक में आयी पश्चिमी विचारधारा का विजयी भ्रम टूटता नज़र आ रहा है। आज पश्चिमी साम्राज्यवाद अपनी शिखर की अवधि निभाकर मरणासन्न है। दुनिया भर के समझदार लोग अपने-अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास पर पुनर्विचार कर रहे हैं। अब तक सही समझी जाती अनेक धारणायें व्यवहारिक जिन्दगी में अपने अर्थ खो रही है। पश्चिमी मनोविज्ञान के नाम पर परोसा गया कामुक और उपभोक्तावादी खपत दिन-प्रतिदिन नग्न होता जा रहा है। इस प्रसंग में मार्क्स एंगेल्ज के अनुभवों में तराशे कुदरत, हकीकत मुखी कम्युनिस्ट समाज सम्बंधी चर्चा, इस विचारधारात्मक संघर्ष का ही हिस्सा है। कुदरत एवं मनुष्य के विकास का क्या रिश्ता है, इस का पता भी इसी चर्चा में से चलेगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मार्क्स-एंगेल्ज के अनुभवों में तराशे कुदरत-हकीकतोन्मुख कम्युनिज्म को अपने जज़बात में अनुभव करके ही यह चेतना पैदा होती है कि मौजूद तर्ज पर हो रहा कथित विकास हकीकतोन्मुखी नहीं अपितु पूंजीवाद का कल्पित और साम्राज्यवादी पूंजीवाद द्वार निर्मित एक काल्पनिक संसार हैं, जो मनुष्य की कुदरती फितरत और कुदरत दोनों से पूरी तरह अलग-थलग है। असल में यह मानवीय विकास नहीं अपितु मानवीय नस्ल की बर्बादी की तरफ जाती रही है। मार्क्स-एंगेल्ज के अनुभवों में तराशे कम्युनिस्ट समाज के लिए इस कथित विकास के पार जाकर देखने की जरूरत है। साम्राज्यवादी तर्ज के मौजूदा विकास के भ्रमजाल से निकले बिना मार्क्सवादी सिद्धांतों को व्यवहारिक रूप में लागू करना किसी भी तरह संभव नहीं हो सकता। साम्राज्यवादी कल्पना से निकली गैर-कुदरती और गैर-हकीकत भरी जरूरतो (लालसाओं) का अधाया अमीर और मध्यवर्ग आज अपनी असल औकात भूल कर इस धरती पर मौजूद कुदरती स्रोतों पर सब्र करने की जगह ऐसी और पाँच धरतियों के स्रोतों को हड़पने का भ्रम पाल कर जी रहा है। मार्क्स-एंगेल्ज के अनुभवों में तराशे, कुदरत के साथ एक सुर और मनुष्य की हक की जरूरतों पर आधारित कम्युनिज्म को समझ कर ही यह पता चलता है कि नेपाल की माओवादी कम्युनिस्ट पार्टी सहित वैश्विक कम्युनिष्ट लहर इस बुरी दशा में क्यों पहुंच गई है और इस कुंभीपाक नरक में जी रहे अरबों लोगों को वह नई जिन्दगी का स्वप्न क्यों नहीं दिखा पायी?

अनुवाद : तरसेम गुजराल

67 शक्ति नगर जालंधर-2

डब्ल्यू एम 126, बस्ती ग्रजा डाकखाने वाली गली, जालंधर-2

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी आलोचना का मौजूदा/उत्तर आधुनिकतावाद बनाम समाजवाद-मानववाद

(प्रो. नवलकिशोर से मलय पानेरी की बाचतीत)

- **आप बहुत लम्बे अरसे से हिन्दी-आलोचना से जुड़े हुए हैं और एक दौर के अग्रणी हिन्दी-आलोचकों में रहे हैं। तब के समय के और आज के समय के आलोचना-लेखन में आपको क्या अंतर महसूस होता है?**

जिन दिनों मैं आलोचना में शिषेष सक्रिय रहा-सक्रिय अब भी हूँ हालाँकि उतने आवेग के साथ नहीं। तब विचारधाराओं का द्वन्द्व केन्द्र में था। एक ओर मार्क्सवाद-प्रेरित आलोचना-दृष्टि थी, जिसे प्रगतिशील व आगे जनवादी नाम से एक-दूसरे के ध्रुव-विरोधी थे और एक तरह से प्रगतिवाद और परिमलवाद का विस्तार ही थे। आरंभ से ही मैंने इन दोनों अतिवादों को अस्वीकार किया। विचारधारा की दृष्टि से मुझ पर मार्क्सवाद का प्रभाव था, क्योंकि उस युग के उन बौद्धिकों की जमात में जो गैर-बराबरी के विरुद्ध संघर्ष में संलग्न थे, मैं अपने को शामिल पाता था और मेरा सपना भी एक समाजवादी समाज का था। लेकिन भारतीय साम्यवादी दल और जनवादी संस्कृति मंच से मैं सदस्य के रूप में कभी भी संबद्ध नहीं रहा। इसका कारण यह था कि गाँधीवादी प्रभाव में मुझे समाज-परिवर्तन के लिए सशस्त्र क्रांति ही एक मात्र मार्ग नहीं लगता था। सोवियत-संघ में होने वाले लेखकों के दमन के समाचारों को मैं कामरेड लेखकों की तरह पश्चिमी प्रचार मानकर अनदेखा नहीं कर पाता था। साथ ही मुझे विचारधाराग्रस्त आलोचकों का कलावाद के प्रति आत्यन्तिक विरोधी-रवैया भी नहीं जमता था। मेरी दृष्टि में तब भी अभिव्यक्ति की आज़ादी समाज के लिए और व्यक्ति के लिए-विशेषत: किसी भी चिंतक और रचनाकार के लिए एक परमकाम्य मूल्य लगती थी। इन सब कारणों से साहित्य का समाज से बहुत गहरा रिश्ता मानते हुए भी मैं उन लेखकों को ही मान दे पाता था, जो व्यक्ति की निजी ज़िन्दगी या समाज के वृहत् यथार्थ की प्रबलता है। मेरी दृष्टि में कोई लेखक तभी बड़ा लेखक हो पाता है जबकि वह एक बड़ी कला-रचना में अपने सत्य को अभिव्यक्त करता है। मेरा तो इससे भी बढ़कर यह आग्रह रहा कि विशुद्ध

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कलावादी रचनाकार को भी हमें उचित सम्मान देना चाहिए। हो सकता है कि एक व्यक्तिवादी रचनाकार को भी हमें उचित सम्मान देना चाहिए। हो सकता है कि एक व्यक्तिवादी और कलावादी कहे जाने वाले उपन्यास से हम सामाजिक यथार्थ को कोई नया पहलू देखने की ताकत पाएँ या कम से कम उसमें शब्द-संसार के एक नये उत्कर्ष को तो पाएँ ही। यही बात आगे चलकर कला-जगत् में 'बहुलतावाद' के रूप में और साहित्य जगत् में 'शब्दों के लोकतंत्र' के रूप में स्वीकार की गई। वह अनजाने ही मेरी आलोचना में प्रमुख कसौटी बनी हुई थी। मेरे मन में हिन्दी के कलावादी कहे जाने वाले लेखकों के प्रति कभी कोई अवमानना नहीं रही, किन्तु मैं बहुमान उन्ही लेखकों को दे पाता हूँ जो बड़े सामाजिक सरोकारों के साथ एक बेहतर रचना भी दे पाते हैं।

आज की आलोचना के विषय में यह कहना चाहूँगा कि विचारधारा का द्वन्द्व अब उतना नहीं है। सोवियत संघ के विघटन के साथ ही एक तरह से विचारधारा-युग का अंत भी हो गया लगता है क्योंकि समानता के स्वर्णिम संसार का सपना भी भंग हो गया है। इसका मतलब यह नहीं है कि समाजवाद का विचार ही दफ़न हो गया है। ये ज़रूर हुआ है कि अब यह अहसास हो गया है कि दुनिया में-हमारे देश भी निकट भविष्य में यह सपना घटित होने वाला नहीं है। हम विकास की जिस दिशा की ओर सन् 1990 से बढ़ रहे हैं, वह मुख्यत: बेरहम पूँजीवाद की दिशा ही है।

- **उत्तर आधुनिकतावाद के अनुसार राजनीति के क्षेत्र में वामपंथी और दक्षिणपंथी द्वन्द्वों का भी अंत हो गया है- इस विषय में आपका क्या कहना है?**

इस बीच विचारों के संसार में उत्तर-आधुनिकता का बिगुल खूब बजता रहा है। दुनिया के नक्शे से साम्यवादी व्यवस्थाओं के लाल रंगों के मिटने के कारण भी इस चिन्तन-दृष्टि को बहुत बल मिला। इस विचारणा का सीधा सम्बन्ध पश्चिम के उत्तर औद्योगिक समाज और उत्तर-पूँजीवाद से है-उस समाज से-जहाँ बहुराष्ट्रीय निगमों की शृंखला का मनुष्य के जीवन पर बहुत अधिक नियंत्रण हो चुका है और जहाँ हैरतअंगेज तकनीकी विकास हुआ है। वहाँ एक ओर तो व्यक्ति बहुत बेचारा हो गया है और दूसरी तरफ उसके हाथ में ऐसे संचार-साधन आ गए हैं जो उसे विचार और रचना की स्वतन्त्रता के साथ अभिव्यक्ति का निर्बाध अवसर भी देते हैं, बशर्ते कि वह उस समाज में स्वतंत्रता-विरोधी बहुतेरे दबावों के बीच भी एक विचारशील स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व को साध सके। उत्तर-आधुनिकता का चिंतन पूँजीवाद की अंतिम विजय को अपरिवर्तनीय मानकर चलने वाली सामाजिक-आर्थिक विचारधारा से प्रभावति था। लेकिन यह कहना पुरानी राजनीतिक अंधमतवादिता का ही सूचक है कि यह उत्तर-औपनिवेशक दुनिया में नवसाम्राज्यवाद का षडयंत्रपूर्वक प्रस्थापित की गई सांस्कृतिक वैचारिकी थी। इस वैचारिकी के जन्म और इतिहास की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्थितियाँ पश्चिमी समाज में विद्यमान थीं, पूँजीवादी प्रचार-साधनों ने इसके व्यापक प्रसार को संभव किया। यह वैचारिकी पूँजीवादी हितों के अनुकूल थी। उत्तर आधुनिकतावादी वैचारिकी की सबसे बड़ी जो विशेषता बताई जाती है वह यह कि इसने यूरो-क्रेन्दित ज्ञान-पद्धतियों को भी उचित महत्त्व देने का आह्वान किया और तदनुरूप सांस्कृतिक क्षेत्र में बहुलतावाद को मान दिया। हाँ उत्तर आधुनिकतावाद ने यूरोपीय सभ्यता की उच्च भूमि से अन्य संस्कृतियों को परखने की विडम्बना को प्रस्तुत किया, वहीं एक बड़ी असंगति को भी जन्म दिया। विज्ञान, ज्ञानोदय और तर्क-बुद्धि को मानवीय अस्तित्व के लिए निर्णायक महत्व देने की घटना योरोप में घटी थी, लेकिन वह सिर्फ मनुष्य की ही विरासत नहीं थी वरन् वंह आगे संपूर्ण मनुष्यता की विरासत बनी। सभ्यता के इतिहास में मनुष्य को स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर करने में वैज्ञानिक-बुद्धि का योगदान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। इसने मनुष्य को ईश्वर, प्रकृति और धर्म के बहुविध बंधनों से मुक्त किया है। उदाहरण के लिए दुनिया भर के आदिवायियों की सभ्यताओं को पिछड़ा कह कर एकदम जंगली ठहरना जहाँ विज्ञानश्रित बुद्धि का दंभ है वहाँ उनकी सभी प्रथाओं-को ऐसी प्रथाओं को भी जो मनुष्य के लिए विघातक और बंधनकारी है-मान लेना स्वयं समूची मानव-जाति के लिए कलंककारी है, जैसे अनेक आदिवासी समाजों में स्त्री जाति के प्रति गुलामों जैसा बर्ताव (बहु पत्नी-प्रथा, डायन-प्रथा आदि)।

उत्तर-आधुनिकतावादी वैचारिकी ने चिंतन की दुनिया में महाख्यानों के अंत की घोषणा की लेकिन उसने पूँजीवाद के नये बन रहे महाख्यान की कोई चर्चा नहीं की। उसने नव भूण्डलीकरण और नव आर्थिक-उदारतावाद अर्थात् नव साम्राज्यवाद द्वारा कायम व्यवस्था में गरीब मुल्कों के गरीबों की बेहाली पर कोई ध्यान नहीं दिया। 21 वीं सदी की पहली दहाई में अमेरिका और यूरोप में आयी मंदी ने भी पूँजीवाद के नये बन रहे महाख्यान को ध्वस्त कर दिया। दुनिया भर में जो खून-खराबा होता रहा था विशेषकर ईराक और अफगानिस्तान में, इसके पीछे भी मूल कारण नव सम्राज्यवाद था। जो ज़ेहादी विचारधारा सामने आयी वह साम्राज्यवादी देशों द्वारा ही अपने हित में पाली-पोसी गई थी। उसके नतीजे में धार्मिक कट्टरता का ऐसा विस्फोट हुआ जो मनुष्य जाति के लिए भस्मासुर सिद्ध हो रहा है। कट्टरतावादी विचारों के फैलाव का एक बड़ा कारण यह भी है कि बुद्धिवाद को संदेहास्पद बना दिया गया-हालांकि इसे मूलगामी कारण नहीं कहा जा सकता-मूलगामी कारण तो आर्थिक हितों के टकराव में ही तलाशा जा सकता है। स्वयं हमारे देश में भी यह समय मज़हबी कट्टरता के उभार का कहा जा सकता है जिसकी परिणति हम आज भी आतंकवादी घटनाओं के रूप में देख रहे हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

- **आप उत्तर आधुनिकतावाद पर क्या केवल नकारात्मक रवैया रखते हैं या आलोचना में उसका कोई सकारात्मक पहलू भी देखते है?**

उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन की एक उपलब्धि यह अवश्य है कि इसने सभ्यता की मुख्यधारा से किनारे कर दिये गये लोगों की और विशेष रूप से ध्यान खींचा। यहीं से अस्मितावादी राजनीति ने जन्म लिया। इसका श्रेय पश्चिम के महिला जगत् में घटित नारीवादी आन्दोलन और अमेरिका में घटित अश्वेत-मुक्ति आन्दोलन को भी दिया जाना चाहिए। इनके प्रभावस्वरूप हमारे देश में भी दलित-मुक्ति और आदिवासी-मुक्ति के विमर्श सामने आये और उन्होंने कला और साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला। उदाहरण के लिए हमारी साहित्यिक आलोचना का जो रूप बीसवीं सदी के अधिकांश भाग में रहा वह उस सदी के अंतिम चरण से सर्वथा बदलने लगा था। साहित्य को केवल सौन्दर्यात्मक मूल्यों के पैमाने पर परखने का रिवाज़ तो साहित्य में प्रगतिशीलता के बढ़ते हस्तक्षेप से समाप्तप्राय हो गया था लेकिन अब मुक्ति की परिभाषा बदल गयी। प्रगतिशील साहित्य समाज-व्यवस्था को दो भागों में बाँटकर देखता था। समाज-व्यवस्था में एक छोटा सा वर्ग उत्पीड़नकारी था और जनता का विशाल वर्ग उत्पीड़ित। समाज-संरचना युगों से पितृसत्तात्मक चली आ रही थी, जिस कारण स्त्री उत्पीड़ित थी और पुरुष उत्पीड़ित। हमारे यहाँ की वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण जातीय-व्यवस्था के शीर्ष पर था तो दलित अधोस्तर पर। इस जाति-व्यवस्था में सवर्ण उत्पीड़ित थे कि उनके साथ पशु से भी बदतर व्यवहार किया जाता था। शूद्रों में अनेक जातियाँ तो अस्पर्श्य थीं। आदिवासी समाज के साथ भारतीय भी भारतीय अभिजन ने कोई अच्छा सलूक नहीं किया था। उन्हें पहाड़ों-जंगलों के सुदूर अंचल में धकेल दिया गया था और वहाँ भी प्रकृति प्रदत्त जीवनयापन के साधनों की लूटपाट कर उन्हें अधिक से अधिक वंचित किया जाता रहा था। आज़ादी के साथ हमारे संविधान ने व्यवहार में उनका पालन इतना कम हुआ कि इन समुदायों को अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करते रहना पड़ा है।

- **पहले आलोचना में सिद्धान्त-चर्चा का दौर-दौरा था और आज विमर्श-चर्चाओं का दौर है-इस संबंध में आप क्या कहना चाहेंगे?**

साहित्य की दुनिया में स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श व आदिवासी विमर्श का व्यापक असर पड़ा और इन विमर्शों की प्रेरणा से जो साहित्य आया वह हिन्दी के नये साहित्य का एक अविभाज्य अंग है। जैसा कि साहित्य में सदा होता है-रचनाशीलता आगे रहती है और आलोचन ज्यादातर उसके पीछे ही चलती है। इसलिए आरंभ में हिन्दी-आलोचना को लेकर इन विमर्शों ने लगातार सवाल खड़े किये, किंतु आज स्थिति यह है कि हिन्दी के नये से नया आलोचक इन विमर्शों में सहभागी हुए बिना आगे बढ़ने की कल्पना भी नहीं कर सकता। इस परिदृश्यता में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं पाता हूँ कि मेरा स्वर कुछ अलग है, जिसे सुनना भी शायद अधिकांश लेखकों को गवारा नहीं हो। मैं स्त्री-मुक्ति, दलित-मुक्ति, आदिवासी-मुक्ति, प्रताड़ित और वंचित मानवता के किसी भी हिस्से की मुक्ति का पक्ष लेते हुए भी वर्ग-विषमता की समाप्ति के विचार को महत्त्व देना नहीं भूल पाता। मेरे विचार में मनुष्य की मुक्ति तब तक संभव नहीं है जब तक दुनिया में गरीबी का खात्मा न हो। अगर हम खण्डित मुक्तियों के विमर्श में ही उलझे ही रहते हैं तो मनुष्य की अखण्डित मुक्ति को विस्मृत कर बैठते हैं। मार्क्सवादी शब्दावली में सर्वहारा की मुक्ति की बात की जाय या गाँधीवादी शब्दावली में आखिरी आदमी तक पहुँचने की बात की जाए। इसे तब तक नहीं पाया जा सकता जब तक समाज-संरचना के समाजवादी विचार को स्वीकार नहीं किया जाए। यहाँ यह कहने की जरूरत तो नहीं है, फिर भी स्पष्टता के लिए कहा जाए कि सामाजिक-संरचना में बराबरी लाने का मतलब यह नहीं है कि आदमियों के बीच सामर्थ्य और साधना की गैर-बराबरी को भी अस्वीकृत कर दिया जाए। बराबरी वाले समाज का मतलब है-ऐसा समाज जहाँ आगे बढ़ने के लिए हर आदमी को समान अवसर उपलब्ध हों। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में साहित्य में गैरबराबरी वाले समाज के अंत का सपना यूटोपिया नहीं लगता था, लेकिन उस सदी के उत्तरार्द्ध से वह वापस यूटोपिया होने लगा और इक्कीसवीं सदी में तो वह संभावना के अंतरिक्ष से बाहर ही हो गया लगता है। मैं एक पाठक के रूप में रचनाकार से यह माँग नहीं करता कि वह क्या लिखे, लेकिन मुझे वही रचना मूल्यवान लगती है जो मनुष्य की संपूर्ण मुक्ति की चेतना से प्रेरित हो। खण्डित मुक्ति में वह संपूर्ण मुक्ति का भ्रम न दे।

इस समय हिन्दी-आलोचना में अस्मिता-विमर्श केन्द्र में है और साम्य का विचार हाशिए पर चला गया। हिन्दी में नारी-विमर्श और स्त्री-विमर्श पिछले दो दशकों से चर्चा में हैं। लेकिन इनके संबंध में हमारी भाषा में सैद्धान्तिक प्रकृति की गंभीर पुस्तकें बहुत कम प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए-नारी-विमर्श के संबंध में महत्त्वपूर्ण पुस्तक यदि कोई उपलब्ध है तो वह प्रभा खेतान की 'उपनिवेश में स्त्री' है, जिसमें मार्क्सवादी को संदर्भ में रखते हुए स्त्री-मुक्ति के प्रश्न पर विचार किया गया है। हंस के संपादकियों को इन दोनों अस्मिता-विमर्शों को चर्चा में लाने का श्रेय तो दिया जाना चाहिए, लेकिन विचारोत्तेजक होते हुए भी राजेन्द्र यादव की आलोचना फतवेबाजी वाली तो होती ही है, बहुत बार अर्द्धसच्चाइयों से भरी और दुराग्रहपूर्ण भी। दलित-साहित्य को लेकर नये सौन्दर्यशास्त्र की बात बड़े आग्रह के साथ की गई है, लेकिन दलित-सौन्दर्यशास्त्र के संदर्भ में जो भी पुस्तकें उपलब्ध हैं उनमें केवल परंपरावादी अभिजनवाद का प्रबल प्रतिवादभर है। सौन्दर्यशास्त्र की परंपरा में दलित-सौन्दर्यशास्त्र की पहचान क्या होगी और उसका परंपरा ('परंपरा' को यहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
केवल विरासत के अर्थ में लिया जाना चाहिए) को आगे बढ़ाने में योगदान क्या होगा-इस पर बहुत क्रम विचार किया गया है।

- **आलोचना का विकास यदि सिद्धान्त-चर्चा पर निर्भर रहता है तो आज हिन्दी आलोचना में उसके भाव-अभाव के बारे में आप क्या सोचते हैं?**

जहाँ तक हिन्दी आलोचना के सैद्धान्तिक विकास का प्रश्न है दरअसल शुक्लोत्तर युग के प्रमुख आलोचकों के बाद सिवाय नामवरजी के किसी ऐसे बड़े आलोचक का नाम नहीं लिया जा सकता, जिसने आलोचना को ताज़ातरीन साहित्य में जोड़ते हुए निरन्तर सैद्धान्तिक हस्तक्षेप किया हो। मेरा कहने का मतलब यह नहीं हैं जिन्होंने कुछ खास किताबें नही लिखीं हों-वे हैं, लेकिन यह अवसर विस्तार में जाने का नहीं है। मेरे कहने का अर्थ केवल इतना ही है कि सिद्धान्त-विवेचन का भारी अभाव इस समय की हिन्दी-आलोचना में है। पीछे हम उत्तर आधुनिकता का जिक्र कर चुके हैं और कला एवं साहित्य-जगत् में इसका धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है, लेकिन हमारी भाषा में उत्तरआधुनिकतावाद को लेकर जो भी पुस्तकें हैं वे उसका बहुत उलझा परिचय देती हैं और ज्यादातर तो अपठनीय तथा ऊबाऊ अनुवाद की भाषा में है। विखण्डनवादी आलोचना की जो एकमात्र पुस्तक कामायनी से संबंधित सुधीश पचौरी की मिलती है वह अत्यन्त विवादास्पद है। रचनाकार विशेष के बारे में उल्लेखनीय पुस्तकों की सूची हम बना सकते हैं किंतु वैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें कम ही होंगी जैसी कि पुरुषोत्तम अग्रवाल की (कबीर) और नंदकिशोर नवल की (तुलसीदास) हैं। ये पुस्तकें संबद्ध रचनाकारों के बारे में आलोचना की नयी ज़मीन तोड़ती हैं। हो सकता है दो-चार ऐसी किताबें और हों जिनका उल्लेख याददाश्त पर जोर डालकर किया जा सकता है। मेरा उद्देश्य केवल यह बताना है कि लंबे अध्ययन, अन्वेषण और सुदीर्घ साधना से जैसी कृतियाँ संभव होती हैं उस तरह के आलोचनाधर्मी लेखक हिन्दी में इधर दुर्लभ होते जा रहे हैं। यों एक साधारण-सा समीक्षक भी आज जिस सूचनात्मक ज्ञान का परिचय देता है, उससे उसके पाण्डित्याभास का रुआब ज़रुर पड़ सकता है। इधर कथा-लेखन पर इतनी चर्चा होती है और ऐसी चर्चा होती है कि आप एक बार उसे सरसरी तौर पर पढ़ जाएँ तो दुबारा पढ़ने की ज़रुर महसूस नहीं होती। मैं यह बात जोर देकर कहना चाहूँगा कि मुझे सामान्यतः एक आलोचनाधर्मी लेखक की अपेक्षा एक सृजनधर्मी की आलोचना-दृष्टि से गुज़रना ज्यादा उपलब्धिपूर्ण लगता है। यह बोलते समय मुझे राजेश जोशी की डायरी का स्मरण हो रहा है, जिसमें अनेक लेखकों पर अन्तर्दृष्टिपूर्ण टिप्पणियाँ हैं।

- **आज संस्कृति-विमर्श में बहुसंस्कृतिवाद का बहुत आग्रह रहता है-इस बहुसंस्कृतिवाद का कोई ऐसा अंधेरा कोना भी है जिसकी चर्चा भी होनी चाहिए?**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आधुनितावाद के बहुसंस्कृतिवाद की एक बड़ी सीमा जो है कि यह कि सार्वभौम मानव-मूल्यों का तिरस्कार। उदाहरण के लिए सांस्कृतिक वैविध्य को सम्मान देने के नाम पर क्या लिंग-समानता के आज के सार्वमान्य मानव-मूल्य को नज़रअन्दाज किया जा सकता है? क्या उस प्रकार के साहित्य को सम्मान दिया जा सकता है जिसमें अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के नाम पर स्त्री-पुरुष समानता दिया जा सकता है जिसमें अपनी अपनी सांस्कृतियों को अनालोचनात्मक दृष्टि से देखें जिनमें अंधमान्यताओं और अंधविश्वासों का चित्रण उस स्थानीय संस्कृति विशेष के प्रति मोहान्ध होकर किया गया हो। मेरी दृष्टि में साहित्यिक आलोचना का यह एक सार्वभौम मानदण्ड होना चाहिए कि ऐसे साहित्य को विशेष महत्त्व दिया जाए जिसमें मनुष्य के प्रति मनुष्य के अन्याय को अस्वीकार किया गया हो, एक बड़ी शक्ति के द्वारा एक कमज़ोर देश के शोषण को अन्यायपूर्ण माना गया हो, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक गैर बराबरी को सर्वथा अस्वीकार किया गया हो और उस सबके विरुद्ध आवाज़ उठायी गई हो। हम अपने साहित्य में यह माँग जरूर कर सकते हैं कि वह केवल पश्चिमी नव सम्राज्यवाद के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करने में ही अपनी क्रांतिधर्मिता को चरितार्थ न करे अपितु भयंकर विषमता है उसके प्रति भी गहरा विरोध प्रकट करे।

- **आपने हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र में मानववादी प्रतिमानों को प्रस्तुत किया। इन प्रतिमानों से समन्वित आपकी आलोचना-कृतियों का खूब स्वागत भी हुआ था- अनेक जाने-माने आलोचकों ने आपकी दोनों पुस्तकों-'मानववाद और साहित्य,' 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता' के बारे में विस्तृत टिप्पणियाँ की थीं। इन कृतियों के बाद आपने लेखन की गति धीमी कर दी और शायद इतनी धीमी कि आपकी उपस्थिति का स्वीकार भी क्रमशः कम होता गया-ऐसा क्यों हुआ?**

यह कहना तो अक्षम्य और दंभपूर्ण होगा कि मैंने मानववाद के नाम पर एक नयी आलोचना-दृष्टि हिन्दी में प्रसारित की। मनुष्य के सांस्कृतिक इतिहास में मानववादी-चिंतन का स्रोत उतना ही पुराना है जितना कि बाध्यकारी शक्तियों से मानवीय स्वाधीनता की आकांक्षा। हमारे देश के भाषा-साहित्यों में नव मानववादी स्वर नवजागरण और राष्ट्रीयता से जुड़े साहित्य में बहुत स्पष्टता से सुने जा सकते हैं। मैंने इस स्वर को सबसे अधिक टैगोर के माध्यम से सुना है। छठे दशक के आरंभ में मुझे राजस्थान विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से उनकी एक पुस्तक 'टूर्वड्स युनिवर्सलसमेन' पढ़ने को मिली थी और मैं उससे गहरे प्रभावित हुआ था। आगे हिन्दी में मैंने मानववाद (मानवतावाद) का अभिप्राय आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में समझा और इसी क्रम में उससे कुछ अधिक अज्ञेय के शब्दों से (अज्ञेय मानवेन्द्रनाथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राय से प्रभावित थे)। इसी दशक में डॉ. धर्मवीर भारती की किताब 'मानव मूल्य और साहित्य' आयी थी जिसमें धर्मवीर भारती का नजरिया स्वातन्त्र्य-रक्षा के नाम पर स्पष्टत: मार्क्सवाद का विरोधी था। हिन्दी के साहित्यकार-दार्शनिक डॉ. देवराज ने अपनी एक पुस्तक में 'सर्जनात्मक मानववाद' का प्रतिपादन किया है, लेकिन वह संस्कृति तक सीमित विचार मात्र होकर रह गया है। इसी स्वाध्याय क्रम में मुझे एक अमेरिकी (या बर्तानवी, स्पष्ट याद नहीं)विचारक कोर्लिस लेमॉण्ट की पुस्तक 'फिलोसॉफी ऑफ ह्यूमेनिज़्म' पढ़ने को मिली जिसने धर्म विरहित और वैज्ञानिक बुद्धि-संगत मानववाद की अवधारणा को समझने की और वैज्ञानिक बुद्धि-संगत मानववाद की अवधारणा को समझने की मुझे दृष्टि दी। वैज्ञानिक जूलियन हक्सले की 'साइण्टिफिक ह्यूमेनिज़्म पुस्तक ने इस दृष्टि का और उन्मेष किया। इस प्रसंग में जिन भारतीय और पाश्चात्य विचारकों की पुस्तकों से कुछ सीखने को मिला उनका जिक्र यहाँ अनावश्यक होगा। मैं केवल अंग्रेजी में तब उपलब्ध कतिपय अति-चर्चित कृतियों का ही जिक्र करूँगा। जिनसे मैं दूर तक प्रभावित हुआ। एक है-सार्त्र की पुस्तक एक्टिजस्टेंशियलिज़्म एण्ड ह्यूमेनिज़्म और दो पुस्तकें हैं अन्सर्टफिशर की 'दी नेसेसिटी ऑफ आर्ट' और 'आर्ट अगेन्स्ट आईडियोलॉकजी'। इन पुस्तकों ने मुझे बौद्धिक उत्तेजना ही नहीं दी, अपितु साहित्य को समझने और परखने का एक अलग नज़रिया भी दिया। इन अंग्रेजी की पुस्तकों से यह न समझा जाय कि अपने अग्रज हिन्दी विचारकों और आलोचकों से मैंने कुछ कम ग्रहण किया है। उस सबके विस्तार में जाना तो एक तरह से अपने अध्ययन-काल की उस कहानी को दोहराना होगा जो इधर मेरे लिए भी भूली-बिसरी होती जा रही है। फिर मैं अपने को इतना महत्त्वपूर्ण कतई नहीं मानता कि हिन्दी-आलोचना का साधारण पाठक उस कहानी को जानने की चिंता करे। मैं दृढ़तापूर्वक इस विचार का खण्डन अवश्य करता हूँ कि हम केवल अपनी परंपरा और अपनी भाषा तक सीमित रहें। अपने सामर्थ्य पर हमें दुनिया भर के समकालीन ज्ञान और साहित्य से जुड़ना है और ऐसा करके ही हम अपनी भाषा को अधिक समृद्ध कर सकते हैं। पश्चिमी साम्राज्यवाद के जुल्मों को जहाँ हमने भोगा है वहाँ पश्चिमी का इतिहास हमारी क्षमा के लायक नहीं है, लेकिन महाकाल के प्रवाह में चिंतन के नये सीमान्तों में हमारा प्रवेश पाश्चात्य संपर्क के जरिये ही हुआ है इसे हमें असंदिगध रूप में स्वीकारना चाहिए। हाँ, पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के आंतक और अनुकरण के प्रति सावधान रहते हुए और अपनी देशज संस्कृति और साहित्य के प्रति सम्मान भाव रखते हुए हमें पेशेवर बौद्धिकों की भूमिका ग्रहण करनी चाहिए। मानववाद और साहित्य के द्वारा मैंने शीतयुद्ध से प्रभावित हमारी आलोचना के दो ध्रुवान्तों में लोकतंत्रवाद और समाजवाद से प्रेरित एक नई उभरती दृष्टि अपनायी तथा चिंतन और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

Imp.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को अनिवार्य मूल्य मानते हुए साहित्यिक आलोचना को उससे जोड़ने का प्रयास किया। तब हिन्दी आलोचना में 'प्रगतिशील-आलोचना' केन्द्र में थी उस समय रूसी और भारतीय साम्यवादी दल से अनुशासित (प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष) हिन्दी की मार्क्सवादी आलोचना में समाजवाद और स्वतंत्रता को समान सम्मान देने वाली मेरी आलोचना दृष्टि का खुला स्वागत तो संभव नहीं था, फिर भी 'मानववाद और साहित्य' की उस समय जितनी चर्चा हुई, वह मुझे पर्याप्त प्रोत्साहनपरक लगी। यह पुस्तक राधाकृष्ण से 1972 में निकली थी और इसका संस्करण जल्दी ही बिक गया था। इस पुस्तक को उस समय के प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे ने संयोग से पढ़ा और सराहा था। लेकिन इसके अगले संस्करण का कोई प्रस्ताव प्रकाशक की ओर से नहीं आया तो इसका कारण यही समझ में आता है कि हमारी अंग बने बिना या लेखक के नामी बने बिना अगले संस्करण में नहीं जाती। रूसी आलोचना में एक समय 'समाजवादी मानववाद' एक बहुप्रचलित अवधारणा थी, लेकिन सोवियत-संघ में चिंतन और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगे प्रतिबंधों के उत्तरोत्तर उजागर होने के साथ वह अमान्य होती गई तब मार्क्सवादी चिंतन के क्षेत्र में मानववाद की तीव्र आलोचना फ्रांसीसी दार्शनिक अल्तुसेर ने की थी।

- **क्या आप द्वारा प्रसतावित मानववादी प्रतिमानों की आज के साहित्य के संदर्भ में कोई उपादेयता अब भी शेष है?**

सोवियत संघ के ध्वंस के कारण साम्यवादी विचारधारा के पराभव और पूँजीवाद के बढ़ते विजय-अभियान के साथ मानववाद जैसी विचारधारा भी बहुत विचारणीय नहीं रही इसी दौर में उत्तर आधुनिकतावाद आया जो किसी भी सार्वभौम मूल्य को स्वीकार नहीं करता था। मानववाद चूँकि कुछ सार्वभौम मानवीय मूल्यों को लेकर चलता है, इसलिए उत्तर आधुनिकतावाद से उसकी उसकी कोई संगति नहीं बैठती। यहाँ केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि जैसे समाजवाद आज भी अप्रासंगिक नहीं हुआ है, वैसी ही मानववाद भी। जैसे आज हम समाजवाद को एक स्थिरीकृत विचारधारा के रूप में नहीं देखते वैसे ही मानववाद को एक स्थिरीकृत अवधारणा के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। सामजवाद और मानववाद साहित्य रचना के लिए हमेशा प्रेरणास्पद जीवन दृष्टियाँ रहेंगी। मानववाद आलोचना के लिए निश्चित प्रतिमान नहीं प्रस्तावित करता। वह एक अन्तर्दृष्टि के रूप में ग्राह्य हो सकता है। उस अवधारणा को मैंने जिस रूप में तब ग्रहण किया था उसका विनियोग प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास के सम्बन्ध में करते हुए दूसरी पुस्तक लिखी थी 'आधुनिक हिंदी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता'। यह पुस्तक भी उस समय की चर्चित पुस्तकों में थी। मानववाद एक सदा विकासशील अवधारणा है। साहित्य में समय-संदर्भ में ही उसका विनियोग होना चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने लेखन की गति धीमी करने की जिम्मेदारी मैं बखूबी बाह्य कारणों पर डाल सकता हूँ किन्तु वैसा करना अपने दायित्व से इंकार करना होगा इसलिए हिन्दी आलोचना में अपना जिक्र कम होने के कारण भी मैं ही हूँ। मुझे संतोष इतना ही है कि अब भी हेतु भारद्वाज जैसे कुछ मित्र-संपादक मुझसे न केवल लेख आदि का आग्रह करते रहते हैं अपितु चाहते हैं कि अपने निरंतर कुछ न कुछ लिखे जाते लेखों को पुस्तक-रूप दूँ।

एक स्तर पर अति-आधुनिक और दूसरे स्तर पर अति परंपरावादी जिन भारतीय बौद्धिकों ने गैर धार्मिक मानववादी चिंतन को आज के मनुष्य के आत्मिक व नैतिक पतन का कारण माना है उन्हीं में हैं स्व. निर्मल वर्मा। बल्कि हिन्दी में तो इस प्रकार के विचारकों में प्रमुख हैं। मानववाद को प्रगति विजय का ध्वंसोन्मादी अहंकार देन वाली विचारधारा मानते हैं और धर्म-विरोध को आज के मनुष्य के आध्यात्मिक या आन्तरिक खोखलेपन का निमित्त। इस विचार क्रम में वे तर्क-परंपरा को भी तिलांजलि देते हैं। कुछ साल पहले 'धर्मयुग' (अवसान के कुछ पहले की बात होगी) के पन्नों पर समाजवाद व मानववाद के विरोध में लिखे गए उनके एक लंबे लेख का उतना ही लंबा प्रतिवाद भी किया था। यहाँ केवल इतना ही कहूँगा समाजवाद-मानववाद के साथ धर्म-निरपेक्षता को मंत्रवत् भजने वाले अपने जमाने की सत्ता-व्यवस्थाओं की व्यवहारगत सर्वविदित विसंगतियों को वे पराकोटि तक ले जाते हैं और मूलभूत स्थापनाओं के तिरस्कार में तर्क-बाह्य एवं तथ्य-बाह्य मनमानेपन का परिचय देते हैं। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में प्रकृति पर विजय का अभिमान सभ्यता के विकास की एक मंजिल माना गया था, लेकिन बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही पर्यावरण-संरक्षा का विचार सृष्टि के अस्तित्व को बचाने के उपक्रम का अंग बनता गया है। मानववाद धर्माध्यात्म को अपना विचारणीय विषय नहीं मानता। उसका विरोध तो केवल धर्म के 'दासतामूलक' दैवीय बन्धनों से है। धर्मातीत मानवीय नैतिकता का विकास सभ्यता का उच्चतर सोपान क्यों नहीं सिद्ध हो सकता?

- **आप अपनी आलोचना-दृष्टि की आधारभूमि को अब क्या संज्ञा देना चाहेंगे?**

समाजवादी मानववादी कम्युनिज़्म-प्रदत्त आशय से बचने के लिए मानववादी समाजवाद की और धर्मेतर आचार-नीति की विचारणाएँ सदैव विकसनशील रही हैं, उनकी सत्ता-व्यावहारगत दुष्परिणतियाँ, उनकी आधारभूत प्रस्थापनाओं को प्रदूषित नहीं कर सकतीं। क्या गाँधीवादी सत्याग्रह का दुरुपयोग सत्याग्रह के मूल विचार की निष्कलुषता को लांछित कर पाया है? आध्यात्मिक-धार्मिक पाठ के बावजूद गाँधीवाद का मूलाधार मानवतावाद है, जो अन्ततः समाजवाद, मानववाद तथा धर्म-निरपेक्षतावाद का अविरोधी है। ये विचारधाराएँ नयी-नयी उद्भावनाओं के साथ 'जैसी दुनिया है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'उससे बेहतर' का विकल्प प्रस्तावित करती है। अत: वे साहित्य-रचना का अक्षय प्रेरणा-स्रोत भी बनी हैं और बनी रहेंगी। इसका स्थान लेने वाले नये चिंतन-सम्प्रदाय इन्हें अपदस्थ कर नहीं, इनके प्रति ग्रहणशील रहते हुए ही आगे आएँगे। मानववादी सौन्दर्यशास्त्र भी परिवर्तमान कला-दृष्टियों को लेकर ही सार्थक सिद्ध हो सकता है। इसका अस्वीकार-भाव केवल क्रीड़ावादी कलावाद के प्रति है।

अब वह जमाना बीत चुका है जब साहित्य का शुमार क्रान्तिकारी या दुनिया को बदलने वाली ताकतों में होता था। संचार-क्षेत्र में नित नये इज़ाफ के साथ सांस्कृतिक अनुरंजन के इतने माध्यम उपलब्ध हैं कि साहित्य का पहले वाला क्षितिज-स्पर्शी दायरा आज बहुत सिमट गया है। मनोरंजन का इतना अधिक प्रसार हुआ है कि साधरण का एक बड़ा हिस्सा विचारमूढ़ उपभोक्त मात्र होकर रह जाता हैं। बहुजन तक पहुँच वाले फिल्म कला क्षेत्र में भी विचार और कर्म को प्रेरित करने में सक्षम किसी महान् चलचित्र का निर्माण आज अकल्पनीय होता जा रहा है क्योंकि करोड़ों-करोड़ की लागत वाली ग्लैमर फिल्मों के सामने उसका बाज़ार में ठहरना मुश्किल-से-मुश्किल होता जा रहा है। ऐसे में साहित्य की कोई कृति स्थितिजन्य कारण विशेष से या बेहतर मार्केटिंग के तहत् लाखों-लाख पाठकों तक पहुँच भले जाए, पर ज़रूरी नहीं कि वह पाठक को एक बेहतर दुनिया का मुरीद बनाएँ। तब भी समस्त कला-प्रकारों में साहित्य ही एक मात्र ऐसी कला-वस्तु है, जो किसी पाठक में मन:प्रदेश में गहरी सामाजिक-राजनीतिक उथल-पुथल मचा सकता है क्योंकि उसमें संवेदना के साथ ज्ञानात्मक प्रक्रिया भी जुड़ी हुई। आलोचना वही होगी जो किसी श्रेष्ठ साहित्यिक कृति को चीह्न सके और पाठक को उसकी तलाश की तलब दे सके। मोटे तौर पर मानववादी समाजवाद को ही मैं आज के आदमी के लिए एक (न कि एकमात्र) मुक्तिपरक विचारधारा मानता हूँ।

- **साहित्य और आलोचना के अन्त:सम्बन्धों के बारे में क्या आप कोई भविष्य-कथन करना चाहेंगे?**

इक्कीसवीं सदी के प्रथम चरण में पूँजीवादी-जगत् में आई मन्दी के साथ ही साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावादी स्वर मन्द पड़ गए हैं। पहले दशक में लैटिन अमरीका में लोकतांत्रिक जनवाद का उभार हुआ और दूसरे दशक में मध्यपूर्व की फौज़ी-तानाशाहियों के विरुद्ध जो जनान्दोलन शुरू हुए वे ठंडे नहीं पड़े हैं। वे बगैर बड़ी रक्त-क्रान्तियों के जनोन्मुख सत्ता-परिवर्तन की संभावना का संकेत दे रहे हैं। जिहादी आतंकवाद का अभी अंत नहीं लगता, लेकिन वह अपना प्रभाव ज़रूर खोता जा रहा है हमारे यहाँ नक्सलवाद की अपेक्षा जनान्दोलन ही बदलाव की ज़्यादा उम्मीद देते लगते हैं-कुल मिलाकर गाँधीवाद के असिंहात्मक रास्ते पर देश में ही नहीं, दुनिया भर में ज़्यादा भरोसा किया जा रहा है। लोकतांत्रिक जनवाद के इस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उभार के साथ सहित्य में जनवादी रचनाशीलता पुनः केन्द्र में आने लगी है। अस्मितावादी पृथकतावाद की विसंगतियाँ सामने आने लगी हैं और मनुष्य की समग्र मुक्ति का विचार यूटोपिया से कुछ अधिक यथार्थ लगने लगा है। इस लक्ष्य को समर्पित सांस्कृतिक अभियान में साहित्य के लिए भी पूरी जगह होगी ही जो आलोचना ऐसे साहित्य का स्वागत करेगी वही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी क्योंकि भविष्य जन-संघर्षों से जुड़े साहित्य का ही है। गैर बराबरी वाले आज का विकास सभ्यता के लिए अंतिम नहीं है-उसका विकल्प संभव है। यह एक भविष्यकथन नहीं एक भविष्य स्वप्न है और किसी उदात्त स्वप्न के अभाव में भी अच्छा-बुरा साहित्य तो शयद लिखा जा सकता है, लेकिन ऐसी आलोचना नहीं, जो संस्कृति-चर्चा तक जाती हो।

डॉ. मलय पानेरी
431/37 पानेरियों की मादड़ी
उदयपुर (राज.)

प्रो. नवलकिशोर
च-6, सेक्टर-5
हिरणनगरी, उदयपुर

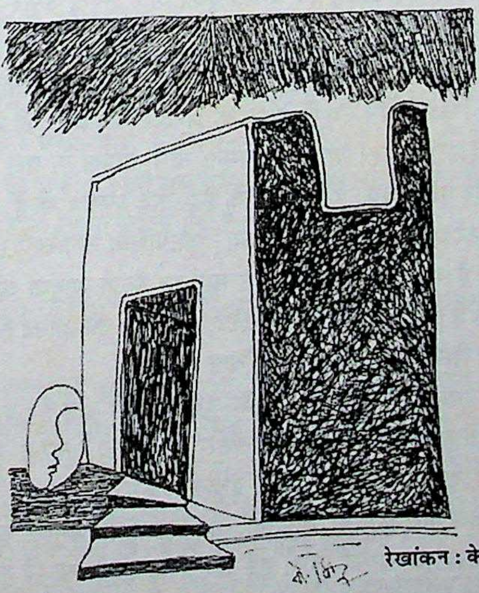

रेखांकन : के.रवीन्द्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो दृश्य, तीन नायक : नेहरू, महादेवी और अल्काजी

● रामशरण जोशी

पहला दृश्य :

कोई अड़तालीस बरस पहले।

शाम संसद मार्ग पर पसर चुकी है। दफ्तरियों की गहमागहमी सिमट चुकी है। अम्बेसडर, फीएट, बजाज जैसे वाहन आने-जाने से संसद मार्ग का सूनापन जरूर भंग हो जाता है। वैसे साइकिल वालों के झुण्ड जरूर गुजरते रहते हैं। गुनगुनाते हुए चले जा रहे हैं वे। बीच-बीच में ट्रिन-ट्रिन कानों से टकरा जाती हैं और अहसास कराती जाती हैं कि ये साइकिल वाले चतुर्थ या तृतीय श्रेणी के सरकार चलाने वालों में से होंगे, अपने-अपने दफ्तरों की फाइलों को समेटते, दरवाजों पर ताला मारते हुए लौट रहे होंगे। कभी कभार तांगा भी गुजर जाता है इतिहास को चीरता हुआ और अपनी उपस्थिति दर्ज करता हुआ। इन सब पर भारी पड़ती है डीटीसी की बस!

मैं जंतर-मंतर पार करता हुआ परेल चौक के समीप हूं। फिर मैं बायें मुड़ता हूं- अशोक मार्ग पर। काफी घने पेड़ हैं-झुण्ड के झुण्ड। लेम्पपोस्ट की रोशनी इन दरख्तों पर बिछी हुई है। रोशनी में नहा रहे हैं ये जामुन, नीम, पीपल के वृक्ष रूपी प्राणी।

अंधेरा और घहरा चुका है। दरख्तों के इर्द-गिर्द अलाव भी हैं, फुटपथिया नागरिकों के ठेठ देसी हीटर! दिल्ली की सर्दी, तोबा! फुटपथिया नागरिकों (बेरजिस्टर्ड) की तो जान की दुश्मन है यह। अलबत्ता अशोक मार्ग पर फैली सर्दियों की धुंध जवानियों को गरमास पहुँचाती है। इस विरोधाभास-अलाव और धुंध का आनंद लेते हुए मैं वित्त राज्य मंत्री तारकेश्वरी सिन्हा की कोठी पर पहुँचता हूँ।

छोटी-सी प्यारी-सी कोठी है। इक्के-दुक्के संतरी खड़े हैं। फ़र्ज़ निभाने के लिए। बस, कोठी के भीतर गहमागहमी है। 'दिनकर' डॉ. नगेन्द्र, 'नीरज' गोपाल प्रसाद व्यास, रमानाथ अवस्थी, देवराज 'दिनेश', विष्णु प्रभाकर, क्षेमचन्द्र 'सुमन', भवानी प्रसाद मिश्र, डॉ. विजेन्द्र स्नातक जैसे कवियों, लेखकों, आलोचकों का जमघट लगा हुआ है। छोटा-सा चबूतरा है। उस पर मसनदें बिछी हुई हैं। ठीक उसके सामने शामियाना है। कनात तले चुनिंदा निमंत्रितगण बैठे हुए हैं। हीटर, ब्लोअर लगे हुए हैं और अंगीठियाँ भी रखी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुई हैं। सबकी आंखें गेट की तरफ जमी हुई हैं। आँखों को प्रतीक्षा है हिन्दी की महाछायावादी कवयित्री महादेवी जी की...जी हाँ, महादेवी वर्मा की। आज उनके सम्मान में काव्य संध्या आयोजित की गई है। मेजबान हैं श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा, आयोजनकर्ता है हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दिल्ली। मैं इस संस्था से नत्थी हूँ, इसलिए मैं यहाँ उपस्थित हूँ... और निमंत्रित भी।

चंद मिनटों की प्रतीक्षा के पश्चात महादेवी जी कार से उतर रही है। श्वेत साड़ी और शाल में उनकी गरिमामयी उपस्थिति से वातावरण अभिभूत हो उठा। उनके काव्य की महक हम सब में घुली हुई है। उनकी पुस्तकों की प्रदर्शनी एक कोने में सजी है। मंच के पीछे लगा उनका विशाल श्वेत-श्याम चित्र आयोजन का विशेष आकर्षण है। पृष्ठभूमि में उनके गीतों के मधुर स्वर इस संध्या को अतिरिक्त आभा से नवाज रहे हैं।

महादेवी जी कार से उतरती हैं। वे सीधे अंदर जा रही हैं तारकेश्वरी जी से मिलने। वे बिस्तर से उठने में असमर्थ है। चंद दिन पहले वे दुर्घटनाग्रस्त हो गई थी। डॉक्टरों ने दो सप्ताह आराम की सख्त हिदायत दे रखी है इसलिए वे लाचार हैं। अपने ही आंगन में उतरी काव्य संध्या में वे अनुपस्थित रहेंगे, इस दुख की कल्पना की जा सकती है। लेकिन निजी असमर्थता के बावजूद उन्होंने काव्य संध्या को यथावत रखा, स्थगित नहीं किया महान कवयित्री के प्रति अपनी श्रद्धा को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी। सो महादेवी जी स्वयं उनके पलंग तक पहुँच रही हैं, कुशलक्षेम जानने के लिए।

हम सब आनंदित हैं, गौरवान्वित हैं-

महादेवी जी के आगमन से। प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त होती हैं। वे मंत्रीजी के कमरे से बाहर निकलकर मंच पर मसनद से सटकर बैठती हैं। उनकी कविताओं, गीतों की प्रस्तुतियाँ चल रही हैं। बीच-बीच में चाय-पकौड़ियाँ भी घुमा दी जाती हैं। पूरा वातावरण महादेवीमय हो चुका है। हम सब झूम रहे हैं। सब भाव विभोर हैं। महादेवी के शांत मुखमंडल पर अद्‌भुत आभा खिली हुई है।

सावधान!

अब इस दृश्य में एक अनोखा पात्र एंट्री लेने जा रहा है...नितांत अप्रत्याशित...अनिमंत्रित!

सावधान!!

मंच के पीछे के शामियाने का पर्दा हट रहा है। सिर पर टोपी, शेखानी-अचकनधारी यह पात्र आहिस्ता-आहिस्ता मंच की ओर बढ़ रहा है। काव्य संध्या ठिठुर जाती है। सबकी आँखें इस पात्र पर गड़ी हुई हैं। मंच पर आसीन सभी शब्द धनी खड़े होकर इस पात्र का अभिवादन कर रहे हैं। महादेवीजी भी पीछे नहीं रहतीं। पात्र का पहला संवाद-
"अरे भाई, कविता को रोक क्यों दी। मैं तो सुनने चला आया हूँ।"

यह पात्र कोई और नहीं, भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं। उनके आने की किसी को जानकारी नहीं थी। न कोई सुरक्षा का बंदोबस्त था। वे अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सहयोगी मंत्री का हालचाल पूछने पहुँच गये, बिना पूर्व सूचना के। कोठी पर पहुँचने पर उन्हें काव्य संध्या का दृश्य दिखाई दिया और उन्होंने अपने गृहनगर इलाहाबाद से आईं महादेवी जी को सुनने की इच्छा व्यक्त कर दी। उनकी इस अनौपचारिकता ने हम सभी को आश्चर्यचकित कर दिया है। देश के नायक को इस प्रकार अपने मध्य देख सबके नेत्र भीगे हुए हैं। सभी के लिए यह अकल्पनीय दृश्य है।

नेहरूजी आधा घंटे महादेवी जी की गीतों भरी संध्या का लुत्फ लेते हैं। दोनों आपस में कुछ बतियाते भी हैं। फिर गोपाल प्रसाद व्यास,जी नेहरूजी से अनुरोध करते हैं-हम सभी की हार्दिक इच्छा...आप इस अवसर पर कुछ कहें।

नेहरू : मैं...कुछ कहूँ? नहीं आज नहीं...। आज मेरी छोटी बहन की शाम है और इसे इनके ही नाम रहने दें। (तालियों की गड़गड़ाहट)

नेहरूजी खड़े हो चुके हैं। जाने के लिए तैयार हैं। सभी लोग खड़े हो जाते हैं। सभी लोग खड़े हो जाते हैं। नेहरूजी मंच से नीचे उतर रहे हैं। महादेवीजी भी उतरने लगती हैं। नेहरूजी कह रहे हैं : आप कहाँ आ रही हैं। यहीं रुकें। सभी लोग इनकी कविताओं का आनंद लें। मैं चला जाऊँगा।

नेहरूजी, सहायक के सहारे से नीचे उतरते हैं। वे आहिस्ता-आहिस्ता अपनी कार की तरफ बढ़ रहे हैं। सफेद अम्बेसडर तैयार है जाने के लिए।

देश का प्रधानमंत्री बिना किसी निमंत्रण के आया और अनौपचारिक के साथ दृश्य से ओझल हो गया।

हम लोग देख रहे हैं गेट से बाहर जाती तीन-चार कारों को...सुरक्षा का न पहले कोई बंदोबस्त था...और न अब! कैसे थे वे राष्ट्र नायक...कैसी थीं महादेवी जी!

काव्य संध्या एक बार फिर अपने रिद्म पर लौट चुकी है जिसमें अब रची-बसी है 'भारत : एक खोज' के महान लेखक की यादगार भरी उपस्थिति की सौंध!

दृश्य : दो

स्थान : आई.एफ.एस., थियेटर, रफी मार्ग

छठे दशक की दिल्ली की शान। थियेटर के दायीं ओर रेल भवन-संसद भवन, बायीं ओर अखबारों का अड्डा-आई.एन.एस. थियेटर के ठीक सामने है इण्डियन प्रेस क्लब और कृषि भवन। इस थियेटर में नाट्य मंचन और नाट्य अवलोकन, दोनों ही प्रतिष्ठा की बात मानी जाती है। अभिजात का रोगन इस पर चढ़ा हुआ है। (तब कमानी आडीटोरियम, श्रीराम आर्ट सेंटर जैसे थियेटर वजूद में नहीं थे।)

शाम के साढ़े पाँच बजे हैं। थियेटर के परिसर में काफी गहमागहमी है। थियेटर में हेमलेट जो मंचित होने वाला है। निर्देशक हैं ई.अल्काजी। जी हाँ, देश के विख्यात नाट्यकर्मी और राष्ट्रीय नाट्य स्कूल (एन.एस.डी.) के निदेशक इब्राहिम अल्काजी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाटक के शुरू होने में अभी 15 मिनिट बाकी हैं लेकिन दर्शकों से हॉल खचाखच भर चुका है। निर्देशक और हेमलेट, दोनों पर फिदा हैं नाट्यप्रेमी। शायद अल्काजी का दिल्ली में हेमलेट का प्रथम शो है। इसलिए 'जेंट्री' थियेटर पर टूट पड़ी है। इसमें निमंत्रित भी हैं और टिकट वाले भी।

अल्काजी अपने कड़क मिजाज और अनुशासनप्रियता के लिए विख्यात हैं। यह वह समय है जब जयपुर से ओम शिवपुरी, सुधा शर्मा, मोहन महर्षि जैसे मंच कलाकार स्कूल में पहुँच चुके हैं और राजधानी के रंगमंच जंगत की शोभा माने जाते हैं। तब थियेटर कैसे सूना रह सकता है?

थियेटर पर अतिरिक्त चहल-पहल का कारण एक और भी है। एक खास अतिथि नाटक को देखने आने वाला है। नाटक शुरू होने में चंद मिनिट शेष रह गये हैं। अल्काजी गेट पर प्रतीक्षारत हैं। वे सभी अपनी रिस्ट वाच को देखते हैं, कभी दायीं ओर के मार्ग पर। अतिथि को संसद भवन सें आना है। छोटी सूई की नोंक 6 बजे की तरफ दौड़ रही है। एक पुलिस अधिकारी अल्काजी के पास आकर सैल्यूट मारता है और अतिथि के दस-पन्द्रह मिनिट देरी होने का संदेश देता है। अल्काजी संदेश सुनते हैं और घड़ी पर नजर डालते हैं। पास खड़े सहायक को जरूरी हिदायत देते हैं। नाटक की घंटी बजने लगती है। मैं अंदर दौड़ता हूँ। मेरे पास विशेष पास था इसलिए अग्रिम पंक्ति में मुझे बैठा दिया जाता है। घंटी बजती है।

ठीक 6 बजे शेक्सपीयर का हेमलेट शुरू हो जाता है। पर्दा उठता है। 'हेमलेट, द प्रिंस ऑफ डेनमार्क' का पहला दृश्य सामने है। मंच पर हैं बरनार्डो (अधिकारी), फ्रांसिस को (सिपाही), मार्सेलुस (अधिकारी), होरेशियो (हेमलेट का दोस्त) आदि पात्र। समय है रात्रि का। रहस्यभरी रात। हॉल खामोशी में लीन है।

दस-बारह मिनिट गुजर चुके हैं। हॉल में दो-तीन लोग टॉर्च लिए दाखिल हो रहे हैं। अत्यंत सावधानी के साथ। उनकी सावधानी 'असुविधा के लिए क्षमा' भाव से मिश्रित है। कुछ अटपटा लगता है हम सभी को लेकिन नाटक रुकता नहीं। पात्र अपनी भूमिका निभाते रहते हैं और टॉर्च वाले होले से निर्धारित सीटों पर बैठ जाते हैं।

मध्यान्तर का दृश्य

हेमलेट का मध्यान्तर हो चुका है। हॉल में प्रकाश फैलता है। प्रकाश विशेष अतिथि की पहचान उजागर कर देता है। मैं देखता हूँ, मुझसे दो-तीन कतार आगे, प्रधानमंत्री नेहरू सामान्य सीट पर ठसे हुए हैं। हॉल में प्रधानमंत्री को देखकर तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठती है। नेहरूजी खड़े-खड़े और पीछे घूमकर सभी का अभिवादन स्वीकार करते हैं। मुझ जैसे कुछ उत्साही दर्शक उनके पास पहुँचकर हाथ मिलाते हैं। सुरक्षा अधिकारी या अंगरक्षक एक तरफ खड़े रह जाते हैं। किसी को रोकते नहीं हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी बीच अल्काजी दौड़े-दौड़े नेहरूजी के पास पहुँचकर कहते हैं-सॉरी, सर! शो हैड टू स्टार्ट!

नेहरू : नो सॉरी...शो मस्ट गो ऑन!

अल्काजी : यस, सर!

मध्यांतर समाप्त हो चुका है। शो शुरू हो जाता है। प्रिंस हेलमेट मंच पर होता है। नेहरूजी सामान्य दर्शक की भाँतित नाटक देखते हैं, अंत तक। समाप्ति के पश्चात अल्काजी का हाथ थामे प्रधानमंत्री थियेटर से बाहर निकल जाते हैं। इसके पश्चात हम दर्शक लोग बाहर आते हैं। फिर सब कुछ पहले जैसा हो जाता है। अल्काजी अपने विद्यार्थी कलाकारों की पीठ थपथपाने लौट जाते हैं।

नेहरूजी के आलोचक उनकी मानसिकता की तुलना हेमलेट से करते हैं : टू बी ऑर नाट टू बी...अर्थात दुविधाग्रस्त...अनिर्णय की स्थिति। यह वह समय है जब भारत की पीठ चीन से मिली पराजय (1962) के ऐतिहासिक बोझ से झुकी हुई है। यदि समय रहते नेहरूजी ने देश को तैयार किया होता तो शायद पराजय का ग्रहण प्रधानमंत्री की छवि पर न लगता। वे 'करूँ या न करूँ...हो या न हो' कीं दुविधा में धँसे रहे और चीन दरवाजे तक पहुँच गया। इसलिए नेहरूजी और हेमलेट को पर्याय कहा गया...हेमलेट ग्रंथि से ग्रस्त!

इस पृष्ठभूमि में नेहरूजी का हेमलेट ड्रामा देखने आना और पटाक्षेप तक ठहरना काफी कुछ सम्प्रेषित करता है। कहीं नेहरूजी इस शो को अपने राजनीतिक नाटक के पटाक्षेप के रूप में तो नहीं देख रहे हैं? मैं स्वयं से बुदबुदाता हुआ थियेटर से बाहर निकल आता हूँ। संयोग देखिए, इस नाटक के करीब बारह महीने बाद नेहरू जी की 'जीवन-लीला' अस्त (27 मई, 1964) हो जाती है पर 'कर्म लीला' की यात्रा चलती रहती है।

प्रधानमंत्री और निर्देशक : एक राजनेता और दूसरा कलाकार, दोनों एक-दूसरे की आभा से निहाल हैं, दोनों की गरिमा की छाप नाटकोत्तर परिदृश्य पर छितराई हुई है, मानो शरद ऋतु की कुनकुनी धूप दरख्तों पर खिल रही हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विमर्श

व्यवसायीकृत चिकित्सा और स्त्री-विमर्श संदर्भ नेपथ्य का सच

● डॉ. उर्वशी शर्मा

चिकित्सा कर्म इस संसार का उज्ज्वलतम पेशा है क्योंकि यह जीवनरक्षा और उसकी योगक्षेम से जुड़ा हुआ है। जब कोई मरीज अपार कष्ट अथवा मरणासन्न अवस्था से निकलकर नया जन्म पाता है तो वह अपने उपचारक के प्रति आजन्म कृतज्ञता और विह्वल श्रद्धा से भर जाता है। अत: इसे ज्यादा कल्याणकारी कर्म और कुछ नहीं माना गया है। इसके बावजूद इसके इस महिमाशाली स्वरूप के साथ जुड़ा है इसका व्यावहारिक-भौतिक-व्यावसायिक पहलू जिसमें नित्यप्रति अनेक प्रकार की चुनौतियाँ और पेचीदगियाँ उत्पन्न हो रही हैं। आमजन इसका कतई अंदाज नहीं लगा सकता कि चिकित्सा के क्षेत्र में नैतिक, कानूनी व्यवसायिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैयक्तिक (निजी) इत्यादि विभिन्न पक्ष हैं जो अपनी संरचना और परिणति में काफी जटिल होते हैं। इसी वजह से यह क्षेत्र आज आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों के नवीनतम उच्चतम विकास के साथ सतत जागरूकता, नियंत्रण, गहरी पड़ताल, बहुआयामी आकलन और पर्यवेक्षण की अपेक्षा करता है। वरिष्ठ व अनुभवी चिकित्सक, प्रोफेसर, डॉ. श्रीगोपाल काबरा की कृति 'नेपथ्य का सच' (एक डॉक्टर की डायरी) ऐसा ही प्रयास है जो इस पेशे के अंतरंग, प्रामाणिक, जटिल (कहीं-कहीं अबूझ) और व्यावसायिक आयामों को सामने लाता है। आधुनिक आयुर्विज्ञान की वर्तमान स्थिति और दिशा को स्वयं एक चिकित्सक की अंत:प्रज्ञा जिस तरह से आकलित करती है, उसे यह कृति सघनता और संवेदनशीलता के साथ सामने रखती है। चिकित्सकीय प्रतिबद्धता से परिपूर्ण, इसके समाप्त होते-होते प्रतीत होता कि विज्ञान की इस शाखा को जैसे मानवता की अदालत में खुला चिट्ठा प्रस्तुत हो, जो आज तक हमारी पहुँच से बाहर था।

इस पुस्तक में चिकित्सा क्षेत्र के लगभग सभी संभावित पक्षों और सवालों को छोटे-छोटे (48) मामलों/घटनाओं के रूप में रखा गया है। इसकी लेखन शैली डायरीनुमा है-जैसा कि शीर्षक के साथ उल्लेखित है (हालांकि तारीखों और निजी पहचान, नामों का इसमें जिक्र नहीं हुआ है)। किसी की आपबीती तो किसी की जगबीती को बड़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
तल्लीनता व आत्मीयता से प्रस्तुत करते हुए आद्यंत, लेख की दृष्टि और अनुभव सार्वजनीन हित-चिंतन से सम्पृक्त मालूम पड़ते हैं। विशेषज्ञ स्वयं इस क्षेत्र में आये क्रांतिकारी परिवर्तन, आधुनिकीकरण, बेतहाशा व्यावसायीकरण, विशेषज्ञता, चिकित्सक-रोगी संबंधों की यांत्रिकता, असंवेदनशीलता, अर्थ-केन्द्रितता जैसे संदर्भों से चिंतित दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि वे भुक्तभोगी (मरीज-परिजन) के साथ समानानुभूति पर केन्द्रित हो, धारा के विपरीत जाकर, बड़े साहस और सत्यता से चिकित्सकीय पेशे की शल्यक्रिया करते हैं और विनम्र संजीदगी से तथ्यों को मय उदाहरण (केसेज) सामने रखते हैं। इस क्रम में वे उन संयोगों की चर्चा करते हैं जो स्वयं मेडिकल साइंस के लिए अद्भुत विरल हैं। ऐसे जीवटधारियों को नजीर के तौर पर याद करते हैं, जिन्होंने असीम सहनशक्ति और धैर्य से कैंसर के विरुद्ध लड़ाई लड़ते हुए अपनी अंतिम यात्रा को गौरवान्वित किया। दवा और दुआ की संयुक्त शक्ति को स्थापित करते हुए उस मानव व्यवहार की भी पड़ताल करते हैं जो अहंकार में चूर किसी को ललकार तो बैठता है लेकिन अंततः प्राणरक्षा के लिए उन्हीं हाथों में आ पड़ता है। प्रजनन स्वास्थ्य की सुविधाओं के संदर्भ में स्त्री जागरुकता व अधिकार सम्पन्नता बनाम स्त्रीत्वहीनता की स्थिति की विडम्बना को रेखांकित करते हैं एच.आई.वी. की विकरालता ही नहीं उसकी अति संवेदनशील परिणति को भी चिह्नित करते हैं। सर्वोपरि, इस क्षेत्र में घटने वाले हादसों, लापरवाही, असावधानी या मानव गलती, चूक को भी उजागर करते हैं।

पुस्तक का अनुशीलन करते-करते ध्यान गया कि इसका एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है इसका स्त्री स्वास्थ्य या प्रजनन स्वास्थ्य विषयक चिंतन। संयोगवश इसमें संकलित सर्वाधिक पाठ (देखें : संदर्भ-5) स्त्री स्वास्थ्य विषयक विविध मुद्दों को एक सर्वथा अचर्चित परिप्रेक्ष्य में उठाते हैं। विशेष तौर पर, आधुनिक चिकित्सा प्रक्रियाएँ और प्रजनन स्वास्थ्य में जिस तरह का परस्पर संबंध बन रहा है वह कुछ संदर्भों में योगक्षेमकारी नहीं दिखाई पड़ रहा है। ''प्रजनन स्वास्थ्य चिकित्सा का अति संवेदनशील विषय है। कारण सामान्य गर्भ और प्रसव, रोग या व्याधि नहीं है। लेकिन इलाज होता है। महिला की अवधारणाएँ और अपेक्षाएँ अलग होती हैं तो चिकित्सक की अलग। अधिकार संबंधी आधुनिक अवधारणाएँ तो बिल्कुल ही अलग।'' वर्तमान महिला और स्वास्थ्य की वस्तुस्थिति पर यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है। तीन अलग-अलग कोणों से एक विषयवस्तु को देखा जा रहा है, लेकिन नजरिए बिल्कुल भिन्न है। भ्रांतियाँ व अस्वस्तिकर स्थितियाँ फैलना लाजमी है। लेकिन चिकित्सक के हाथ में पड़ा मरीज/महिला कठपुतली के सिवाय कुछ नहीं है। वह अपने बारे में कोई निर्णय नहीं कर सकता।

निस्संदेह आधुनिक चिकित्सा ने आशातीत विकास किया है, शल्यक्रिया पहले से कहीं अधिक परिष्कृत, संपुष्ट व सुरक्षित हो गई है। लेकिन चूंकि शल्यक्रिया सुरक्षित हो गई है (उसी अनुपात में महँगी भी) अतः शल्यक्रिया करने की ललक में अनावश्यक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शल्यक्रियाएँ भी काफी बढ़ गई हैं। प्रजनन स्वास्थ्य के तहत ही यदि देखें तो गर्भपात, कृत्रिम गर्भधारण, सीजेरियन, प्रसव, गर्भाशय निस्तारण, डी एंड सी के नाम पर होने वाली शल्य क्रियाओं में अचानक वृद्धि दिखाई दे रही है। कहावत है कि 'जब हाथ में हथौड़ा हो तो हर चीज कील दिखाई देती है। बकौल लेखक, यही स्थिति आज शल्यक्रिया और सर्जन की दिखाई पड़ती है। हाथ में चाकू हो तो सर्जन का हाथ खुजलाता ही है।'

हमारा सरोकार यहाँ केन्द्रीय रूप से आधुनिक चिकित्सा के संदर्भ में स्त्री/प्रजनन स्वास्थ्य को परखना है। विशेषत: आजादी के बाद, नये जमाने की शिक्षा, स्वतंत्रता व स्वावलंबन ने स्त्री के सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक व्यक्तित्व को संशोधित परिवर्द्धित किया है। दैनन्दिन जीवन चिकित्सकीय सुविधाओं ने उसके जीवन को बेहतर व सरल किया है। शिक्षा व कानून की संयुक्त सबलता ने उसके आत्मविश्वास को खड़ा किया और उसके अधिकारों को स्थापित किया। पिछली सदी के 7वें-8वें दशक में बाकायदा सामाजिक-बौद्धिक जगत में 'स्त्री-विमर्श' प्रवर्तित हुआ-स्त्री विषयक समग्र विषयों पर ठोस चिंतन की नींव धरी गई। बहसें चली, लेखन धाराएँ प्रवाहित हुईं सामाजिक संस्थाएँ आगे आई, महिला आयोग का गठन हुआ, महिला आरक्षण विधेयक का प्रारूप बना फिर वैश्वीकरण भूमण्डलीकरण की हवा ने सारे ताने-बाने को नयी कसावट से भर दिया। स्त्री की देह पर स्वयं उसका अधिकार घोषित हुआ और कहा गया कि देह की मुक्ति ही स्त्री मुक्ति का प्रथम चरण है ('देह विमर्श' के रूप में स्त्री विमर्श की कड़ी आलोचना भी हुई और विवादास्पद हुआ) लेकिन इस पूरे विमर्श में स्त्री स्वास्थ्य और चिकित्सकीय सुरक्षा का आधारभूत एवं अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू अनदेखा और उपेक्षित रह गया। जिस नये अवतरण में स्त्री अवतरित हुई वह तमाम बाह्य अर्थात सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भावात्मक, नैतिक पक्षों के चाक दुरुस्त करता रहा लेकिन स्त्री सामान्य स्वास्थ्य, प्रजनन स्वास्थ्य, स्त्री रोग, रोग प्रतिरोधकता, स्त्री-सुरक्षा आदि जैसे गहन गंभीर मुद्दों से असंपृक्त रहा। हमारा मानना यह है कि स्त्री-विमर्श, यदि समग्रतावादी दृष्टि लेकर चलता है तो प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी विषय उसके अनिवार्य घटक होंगे। खास तौर पर आज, जबकि चिकित्सा के आधुनिकीकरण और व्यावसायीकरण ने आधुनिक जीवन शैली के अनिवार्य खतरों के रूप में उसके जीवन में शल्यक्रिया के अतिक्रमण को सुनिश्चित कर दिया हे। ये वे विषय हैं जिन पर अभी हमारा ध्यान आलोचनात्मक नजरिए से नहीं पहुँच पाया है, लेकिन जिन पर विचार करना, विमर्श करना अनिवार्य होता जा रहा है। सवाल यह है कि आधुनिक स्त्री, फिर चाहे वह स्वयं चिकित्सक ही क्यों न हो क्या आधुनिक आयुर्विज्ञान को बिना सोचे-समझे, खतरनाक हथियार के रूप में तो इस्तेमाल नहीं कर रही? क्या कभी उसने गर्भपात की अमानवीय क्रूरता को जाना है? क्या सीजेरियन प्रसव के अप्राकृतिक-अपर्याप्त पक्ष को समझा है? क्या पार्शियल बर्थ अबॉर्शन की जघन्यता को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समझा है? कहीं 'रजोनिवृत्ति के संत्रास' को कुछ अनावश्यक तूल तो नहीं दे दिया? उस पर वैश्वीकरण इत्यादि ने बाजार की जो प्रतिष्ठा बढ़ाई है उसमें तो स्त्री का वस्तुकरण और भोग दोनों हो रहे हैं। सहायक बन रहा है विज्ञान, आयुर्विज्ञान और व्यावसायिक मानसिकता।

स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवाओं ने स्त्री को उसकी बहुत-सी जलालतों से मुक्ति दिलाई। लेकिन अनचाहे गर्भ से मुक्ति, सीजेरियन प्रसव, गर्भाशय निस्तारण, नसबंदी, डी एंड सी आदि किसी भी क्षेत्र में मिलने वाले आँकड़े उन तमाम सीमाओं को बेतरह लाँघ चुके हैं जो सुरक्षा एवं जीवनरक्षा की हदबंदी में आते थे। चिकित्सा क्षेत्र ने जिस तरह से स्त्री शरीर को प्राकृतिक अनिवार्यताओं से मुक्त किया है, वह कहीं मुक्ति के क्रम में छलावा तो नहीं है? जिस पैमाने पर और अंधाधुंध तरीके से इन सहूलियतों का इस्तेमाल किया जा रहा है वह चौंकाने वाला ही नहीं बल्कि घातक है।

आगे हम इन्हीं पर चर्चा करने जा रहे हैं-

चिकित्सकीय गर्भ समापन अधिनियम 1971 द्वारा सुरभित गर्भ समापन के अधिकार को बतौर महिला व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की मान्यता दी गई। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 312 के तहत गर्भ समापन का अधिकार एवं दायित्व चिकित्सक का है। लेकिन चिकित्सकीय गर्भ समापन केवल उसी अवस्था में किया जा सकता है जब माँ के जीवन को खतरा हो और भ्रूण को नष्ट किया जाना आवश्यक हो। वस्तुस्थिति पर नजर डालने पर आँकड़े बता रहे हैं कि एक वर्ष में देशभर में लगभग 50 लाख गर्भपात हो रहे हैं। इनमें मात्र 20 प्रतिशत कानूनी, वैद्य सीमा में आते हैं। शेष 80 प्रतिशत की कहानी यह है कि गैर कानूनी, असुरक्षित, गर्भपात के व्यापक प्रचलन से देश में संक्रमित गर्भपात और उनके फलस्वरूप घातक गर्भपात की दर अत्यधिक चिंताजनक है। 15-30 प्रतिशत मातृ मृत्यु दर का कारण असुरक्षित गर्भपात है। गर्भपात यदि 20 सप्ताह पश्चात करवाया जाता है तो वह न केवल गैर कानूनी है अपितु स्त्री के लिए घातक है। गर्भपात का अधिकार तो उपलब्ध है लेकिन उसकी परिणति स्त्री शरीर व स्वास्थ्य के लिए कैसी वेदनामयी है कि "लम्हों की खता सदियों की सजा बन जाती है..." डॉक्टरी पास करने के बाद ही उनका विवाह हो गया था। पति पोस्टग्रेजुएट डॉक्टर थे। छह महीने में ही गर्भ ठहर गया। वैसे तो भरा-पूरा परिवार था, कोई दिक्कत नहीं थी। मन को भी अच्छा लग रहा था, लेकिन आगे की पढ़ाई, करियर आदि की सोचकर सहज उपलब्ध अबोर्शन करवा लिया। दुर्भाग्य से इंफैक्शन हो गया। दवाओं से ठीक तो हो गया लेकिन बाद में मालूम हुआ दोनों ट्यूब्स ब्लॉक हो गयी हैं। माँ नहीं बन पाई। आज पति-पत्नी दोनों सफल, सम्पन्न चिकित्सक हैं, लेकिन घर और जीवन जैसे सूना है।

तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि अविवाहित अवस्था के गर्भपात और विवाहित के 20 सप्ताह पश्चात के गर्भपात या भ्रूण लिंग परीक्षण के पश्चात कन्या भ्रूण से निजात

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाने के लिए करवाये जाते हैं जिनके करने वाले अप्रशिक्षित अथवा अनधिकृत चिकित्सक हो सकते हैं। आप अंदाज लगा सकते हैं कि राज को राज रहने देने की मनमानी कीमत वसूली जाती है और नियम विरुद्ध होने के कारण इनके कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं रखे जाते। कानून हैं लेकिन उनकी पालना और उल्लंघन पर दण्ड दोनों ही व्यावसायिक हितों के विरुद्ध हैं।

सर्वविदित है कि आधुनिक चिकित्सा में अप्रत्याशित विकास हुआ है। शल्यक्रिया पहले से अधिक सुरक्षित हो गई है। लेकिन आधुनिक व्यावसायीकृत चिकित्सा में अकारण होते सीजेरियन प्रसवों की बढ़ती दर फिर एक संकटपूर्ण दिशा की ओर संकेत करती हैं। स्वयं महिला चिकित्सक द्वारा इसे दर्द रहित, सुरक्षित व सरल क्रिया के रूप में प्रस्तुत किया जाता है अथवा थोड़ी-सी जटिलता होने पर प्रतीक्षा किये बिना सीजेरियन की ताकीद कर दी जाती है। निजी अस्पतालों में यह दर 70 से 80 प्रतिशत तक पहुँच गई है। "इसे उच्च चिकित्सा का प्रतीक माना जाने लगा है। व्यावसायीकरण के दौर में, आधुनिक अस्पताल की चकाचौंध में इसके कुप्रभावों और नुकसान की ओर तो ध्यान ही नहीं जाता। गर्भस्थ नाजुक जीवन पर इसके घातक प्रभाव भी हो सकते हैं।" यह तो अब सोच का विषय ही नहीं है। कुल सीजेरियन प्रसवों में से लगभग आधे गैर जरूरी व जटिलता उत्पन्न हुए बिना ही सम्पन्न कर दिये जाते हैं। जेब पर भारी ये प्रसव नवजात और प्रसूता के लिए भी निरापद नहीं होते। स्त्री के लिए और शिशु के लिए सामान्य प्रसव का महत्व हम समझते ही नहीं हैं।

"सामान्य प्रसव के दौरान गर्भपात से गुजरने की मशक्कत में शिशु शरीर में प्रकृति नियत ऐसे परिवर्तन होते हैं जो उसे असुरक्षित परिवेश से लड़ने की क्षमता देते हैं। दबाव के कारण शिशु के शरीर में केटाकोलामिन आदि पदार्थ स्रावित होते हैं। इनसे लीवर में संग्रहित ग्लाइकोजन ग्लूकोस में बदल जाता है जो शीघ्र ऊर्जा की आवश्यकता पूरी करता है। हृदय और मस्तिक की खून की नलियाँ खुल जाती हैं। शिशु के फेफड़ों में स्थित गर्भजल अवशोषित हो जाता है जिससे ऑक्सीजन एक्सचेंज सुगम हो जाता है।" जाहिर है सीजेरियन प्रसव में यह सब नहीं होता। लेकिन कहाँ इस तरह की परामर्श व्यवस्था उपलब्ध है जो सीजेरियन मानसिकता को निर्मूल कर सके? तथ्यों की जानकारी के अभाव में महिला इसे ही अपने लिए प्रदत स्थितियों में श्रेष्ठ विकल्प समझती है अथवा प्रसव पीड़ा सहन करने से बचना चाहती है। परिवार इसे सुरक्षित मानकर हर कीमत चुकाने को बाध्य होता है, अस्पताल व महिला चिकित्सक की तो चाँदी होती ही है।

अनावश्यक गर्भपात और सीजेरियन के प्रति लेखक की गहरी खिन्नता को उनके लेखन में लक्षित किया जा सकता है, विशेषतः यदि महिला इसे बिना गंभीरता से परिणाम सोचे करवाती है।

इसी क्रम में अगली चेतावनी घंटी हमें गर्भाशय निस्तारण के मामलों की बेतहाशा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वृद्धि को ओर डी. एण्ड सी. देखकर सुनाई दे रही है। गर्भाशय निकालने की औसत उम्र जहाँ पहले 45 वर्ष के ऊपर थी, अब 40 वर्ष लगभग है जो उत्तरोत्तर घट रही हैं। जयपुर शहर की एक पैथोलॉजी लैब में एक वर्ष में 1030 निकाले गये गर्भाशयों के सूक्ष्मदर्शी परीक्षण का विश्लेषण करने पर पाया गया कि 75 प्रतिशत में फाइब्रॉइड गाँठ, एडिनोमायोसिस, पॉलिप या कैंसर जैसा कोई रोग है लेकिन 25 प्रतिशत में किसी भी रोग के साक्ष्य नहीं हैं। 31-40 वर्ष की उम्र में से 35 प्रतिशत में कोई रोग नहीं मिला। 21-30 वर्ष की उम्र में 40 प्रतिशत गर्भाशय नॉर्मल थे। रजोनिवृत्ति रक्तस्राव की अधिकता पर यह कदम उठाया, क्योंकि डॉक्टर को दिखाने पर इलाज किया गया, लेकिन रक्तस्राव की अधिकता इस स्थिति का अनिवार्य लक्षण है जिसका कोई इलाज नहीं होता बल्कि समय के साथ यह स्वयं समाप्त हो जाता है। परंतु अधैर्य और प्रतीक्षा किये बिना ही गर्भाशय निकालने की सलाह दे दी जाती है। चिंता की बात यह है कि ऋतुस्राव, समागम, गर्भधारण, मातृत्व, रजोनिवृत्ति...ये सब जो स्त्री मानव के वैशिष्ट्य और स्त्रीत्व के लक्षण हैं-वर्तमान में रोग मान लिये गये हैं। क्योंकि रोग नहीं होंगे तो इलाज किनका होगा? बड़े-बड़े अस्पतालों और अस्पताल की श्रृंखलाओं का व्यवसाय कैसे चलेगा? शल्यक्रिया के संसाधनों पर खर्च किये करोड़ों रुपयों की भरपायी व कमाई कहाँ से होगी? अतः शल्यक्रिया की माँग पैदा की जाए। ''यह माँग पर शल्यक्रिया ही प्रजनन स्वास्थ्य में अभिशाप बनी है। माँग पर सीजेरियन, माँग पर गर्भपात, माँग पर गर्भाशय निकलाना, माँग पर डी एण्ड सी यह चिकित्सा बाजार की आधुनिक संस्कृति है। अपनी सेवाओं को अगर व्यापक रूप से बेचना है तो उनके लिए माँग बढ़ाओ। आज जब निकृष्ट चीज भी कुशलता से बेची जा सकती है तो स्वास्थ्य सेवाएँ बेचना तो आसान काम है। माहवारी को बीमारी का रूप देकर महिलाओं की महामारी बना दिया गया।'' (ने.दा.पृ.-51)

क्या स्त्री मुक्ति की मुहिम को सही संदर्भों के साथ-साथ सही साधनों पर चलकर सार्थक होने की अपेक्षा नहीं है? समग्रता और सापेक्षता में विचारे बिना कोई भी मुक्ति किसी अप्रत्याशित संकट को आमंत्रित कर सकती है। अतः प्रजनन स्वास्थ्य के तहत स्त्री शरीर से होने वाले खिलवाड़ को समझना पड़ेगा और आत्मजागरुक होने के साथ-साथ स्त्री को भी अपनी शारीरिक प्रकृति और प्रक्रियाओं को सहृदयतापूर्वक, उनके वैशिष्ट्य के साथ स्वीकार करना होगा। प्रजनन स्वास्थ्य इस लिहाज से स्त्री विमर्श के लिए एक बहुत बड़ा और अनिवार्य क्षेत्र खोलता है। स्त्री शरीर के कुछ विशिष्ट कार्य है जिनका उसके शारीरिक मनोवैज्ञानिक जीवन में निश्चित वैज्ञानिक प्रयोजन और निहितार्थ है। आधुनिक जीवन शैली से ये प्रकृति भले ही मेल न खाती हो क्योंकि उसकी रफ्तार में अड़चन पैदा करती है। लेकिन स्वास्थ्य की कीमत पर आधुनिक होने का लाभ भी क्या अधूरा लाभ नहीं है? उस पर, सही जानकारी संतुलित परामर्श सेवाओं की कमी स्त्री जन्म और जीवन को ही क्लेश में तब्दील कर रही है। क्या गर्भाशय निकलवाने वाली महिलायें यह समझ
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
रही हैं कि जिन मामलों में गर्भाशय के साथ ओवरीज भी निकाल दी जाती है, उनमें असमय रजोनिवृत्ति के कारण हॉर्मोनल असंतुलन, गर्मी के भभके, धड़कन का अचानक बढ़ गया, नरवसनेस, तनाव, चिड़चिड़ापन, अवसाद का स्थायी मर्ज आ धमकता है। सामान्य होने के लिए हॉर्मोन्स का नियमित सेवन रोज का काम हो जाता है। ''यह कैसी मुक्ति मिली? खाई में से निकले तो कुएँ में जा गिरे। लेकिन दोष किसे दें?''

सवा खरब की आबादी को पहुँचे भारत में जनसंख्या प्रबंधन के तहत जहाँ गर्भपात को वैधता दी गई वहीं नसबंदी अभियानों के जरिये जनसंख्या नियंत्रण के लक्ष्य बनाये गये। सरकारी स्तर पर शिविरों में सघन अभियान स्वरूप चलाये गये कार्यक्रमों की स्थिति भी कम विडम्बनात्मक नहीं है। जनसंख्या नियंत्रण अभियान को अति उत्साह से चलाने वाले चिकित्सक और चलाने वाले अधिकारी मानवीय मूल्य तो दूर, मूल चिकित्सकीय मूल्यों की कैसी अवहेलना करते हैं यह कुछ शोधपत्रों में उल्लेखित आँकड़ों और निष्कर्षों में देखा जा सकता है–

- अव्वल तो हम यह जान लें कि भारत में स्त्रियों की तुलना में पुरुष नसबंदी को प्राथमिकता 'नहीं' के बराबर दी जाती है अर्थात् यहाँ भी स्त्री पर ही इस कार्यक्रम का फोकस केन्द्रित रहता है।
- 5 साल की अवधि में 140 केस एक्टॉपिक प्रेग्नेंसी के हुये जिसमें 12 केस वे थे, जिनमें नसबंदी ऑपरेशन हो चुका था।
- 1052 महिलाओं में योनिमार्ग से दूरबीन डालकर नसबंदी की गई, उनमें से 144 को गंभीर श्रोणीशोथ हुआ। 17 में तो इतना गंभीर कि आखिर उनका गर्भाशय ही निकालना पड़ा।
- दूरबीन नसबंदी शिविर में आने वाली महिलाओं की संख्या 25-500 प्रतिदिन प्रति दो सर्जन थी। अत: नसबंदी पूर्व उनका आवश्यक चिकित्सकीय परीक्षण संभव नहीं था। नतीजा एक महिला की दर्द निवारक इंजेक्शन देने के दो घंटे में मौत हो गई, क्योंकि उसके छह माह का गर्भ था।
- अन्य तीन महिलाएँ तो न्यूमो पेरीटोनियम (पेट में हवा भरने) के 2-3 मिनट में ही मर गई, क्योंकि कार्बनडाइ ऑक्साइड (रक्त में घुलनशील) की अनुपलब्धता में ऑक्सीजन की अनियंत्रित मात्रा पेट में डाली गई (जो रक्त में अघुलनशील होती हैं)। नतीजा–सुई बाहर निकालते ही महिलाओं के पूरे शरीर में ऐंठन हुई, ताण आई, झटके लगे, शरीर नीला पड़ गया और 2-3 मिनट में ही तीनों की मौत हो गई। अंदाजा लगाया जा सकता है कि प्रजनन स्वास्थ्य और जीवन रक्षा का क्या स्तर हमारे स्वास्थ्य अभियानों और कार्यक्रमों में रहता होगा? अंतत: महिला का जीवन अथवा स्वास्थ्य ही दांव पर लगता है। इसका अर्थ कतई यह नहीं है कि जनसंख्या नियंत्रण नहीं किया जाये या अभियान न चलाये जायें। लेकिन पीड़ा यह है कि घोर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लापरवाहियाँ या तो नजरअंदाज कर दी जाती हैं अथवा आम बात मान ली जाती हैं। आँकड़े टाँग दिये जाते हैं-जनसंख्या नियंत्रण अभियान के महान नसबंदी कार्य में 25000 ऑपरेशन्स में 4 की मृत्यु। बड़ा सफल आँकड़ा है! आखिर शत प्रतिशत सफलता तो कहीं नहीं मिलती। लेकिन काँटे का प्रश्न यह है कि क्या ये महिलाएँ स्वेच्छा से बलि चढ़ गईं? सती हो गईं? दुर्भाग्य यह है कि सती प्रथा के खिलाफ अभियान चलाने वाले महिला संगठनों को भी इन सतियों से कोई सरोकार नहीं है। सरकारी व्यवस्थाओं से खत्म होती विश्वसनीयता और जवाबदेही, तथ्यों की तोड़-मरोड़ आत्मालोचना की कमी दरअसल हमारी मानसिकता बनती जा रही है। इसलिए सर्वत्र गुणवत्ता की गिरावट दर्ज हो रही है जिसका लाभ निजी, छोटे-बड़े अस्पताल तो उठा ही रहे हैं उनका व्यवसाय भी दिन दूना रात चौगुना फैल रहा है।

कृत्रिम गर्भाधान (आई.वी.एफ.) आज आधुनिक चिकित्सा का चर्चित क्षेत्र है। विशेषज्ञता की उच्च सीमा के छूती यह पद्धति स्त्रियों में बाँझपन का इलाज है और संतान प्राप्ति का विकल्प भी। प्रजनन तंत्र में किसी प्रकार की कमी, अवरोध अथवा पति में शुक्राणुहीनता के कारण यह प्रयोग में लायी जाती है। प्रक्रिया काफी लम्बी और बेहद खर्चीली तो है ही, साथ ही अत्यंत त्रासदायक और ह्यूमीलिएटिंग भी है- यह शायद कम ही लोग जानते हैं। बड़े-बड़े अस्पतालों में उपलब्ध इस तकनीक का कारित पक्ष काफी यातनापूर्ण और तब भी सफलता की पूर्ण संभावना से रहित है। (बाँझदंश) जितनी अधिक विशेषता आती जा रही है उतनी ही अधिक जटिलताएँ भी बढ़ती जा रही हैं। व्यावसायिक चिकित्सा में मरीज के लिए सबसे बड़ा अवरोध यह है कि अस्पताल में चिकित्सक रोगी के साथ क्या करने जा रहा है, उसकी चिकित्सा प्रक्रिया क्या होगी, क्या जटिलताएँ रहेंगी, उसकी उपचारात्मक विधि की क्या उपयुक्तता है, इत्यादि जैसे मन में उठने वाले असंख्य सवालों और आशंकाओं पर रोगी को असम्प्रेषण/अँधेरे की स्थिति में रखा जाता है। अनेक मामलों में रोगी स्वयं भी अजागरूक और उदासीन हो सकता है, लेकिन यह स्थिति निश्चित रूप से भयावह और आपत्तिजनक है।

आधुनिक युग जहाँ आर्थिक स्वावलम्बन, भौतिकवादी जीवन, खुली सोच, स्वच्छंद जीवन, निजी अस्मिता की तलाश जैसे मूल्यों पर चल रहा है वहीं अविवाहित लड़कियों में गर्भधारण, अवैध गर्भपात, तद्जनित संक्रमण, अवांछित जटिलताएँ, उनके सामाजिक-पारिवारिक जीवन ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य व सुरक्षा दोनों पर मँडराते संकट से हमें आगाह कर रही हैं। मुक्त जीवनयापन के लिए अभी समाज व्यवस्थाएँ बदल नहीं पायी हैं। बल्कि कहना चाहिए कि कुछ शाश्वत स्थितियाँ हैं जो कभी नहीं बदलेंगी। युवा वर्ग में बढ़ते पार्टी-जश्न के माहौल, 'पार्टी ड्रग्स' और 'पार्टी रेप ड्रग्स' से अछूते नहीं हैं। ये ड्रग्स वे रसायन होते हैं जो बाजार में भी मिल जाते हैं और कुछ विशेष प्रयासों से प्रयोगशाला में भी तैयार किये जा सकते हैं। उनका इस्तेमाल ड्रिंक्स में मिलाकर उन्मुक्त,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्जनारहित आनंद की सीमा बढ़ाने के लिए किया जाता है। पार्टी रेप ड्रग्ज की खासियत है कि इनसे ड्रिंक स्वाद, रंग, गंध नहीं बदलता है। इसे पुरुष लड़कियों के ड्रिंक में चुपचाप मिला देते हैं। ''दवा का असर होने पर लड़की होश में तो रहती है पर हवास खो बैठती है। सुनती-देखती है पर उसको समझती नहीं। चेतन मस्तिष्क में इंद्रियों का संबंध टूट जाता है। इनहिबिशन्स (वर्जनाएँ) खत्म हो जाती हैं। माँसपेशियाँ शिथिल हो जाती हैं, प्रतिवाद करने की क्षमता नहीं रहती। साथ ही दवा के असर के दौरान सारी स्मृति लोप हो जाती है।'' यह तय है कि आज 18वीं सदी की तरह लड़कियों को नजरबंद नहीं किया जा सकता बल्कि सख्त भी नहीं हुआ जा सकता। लेकिन जो हालात हैं, उनमें तो उसे ही सतर्क व जागरुक होकर अपने आस-पास के प्रति चौकन्ना रहना होगा। आत्मरक्षा व स्वास्थ्य रक्षा के प्रति सावधान होना पड़ेगा। तमाम चिकित्सकीय उदारता के बावजूद देह तो स्त्री की ही क्षतिग्रस्त होती है, जटिलताएँ उसे ही भुगतनी पड़ती हैं, मनोबल उसी का टूटता है, छली वही जाती है। फिर शुरू होता है अवैध गर्भपात का अस्वस्थ, शर्मिंदगी भरा सिलसिला और ढेर सारी मानसिक यातना। दरअसल स्वतंत्रता का अर्थ विषाक्त होता जा रहा है। जिसे शरीर की स्वतंत्रता व निजी विकल्प की छूट माना जा रहा है, वह हमारी जानकारी का ही अधूरापन है।

एक बात यहाँ हमें समझनी होगी कि विज्ञान की प्रकृति प्रयोगात्मक है। आधुनिकतम उपलब्धि भी उसके लिए प्रयोग का एक चरण है। वह पूर्णतः निरापद होगा ऐसा कोई दावा नहीं किया जा सकता। वह कितना शुभ या अशुभ होगा- यह पुनः प्रयोग और उसके परिणामों पर निर्भर होगा, जो भविष्य की कोख में है। परिणाम ही इसे निर्धारित करते हैं कि चिकित्सा की कौनसी प्रविधि, उपचारात्मक कार्यक्रम, निदान पद्धति या औषधि कितनी कल्याणकारी या नुकसानदायक है। अतः सतत पर्यवेक्षण और परिणामों का आकलन अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य है। परंतु वस्तु स्थिति यह है कि भारत जैसे विकासशील देशों में चिकित्सा का कल्पनातीत, व्यावसायीकरण, आधुनिक जीवन शैली के दबाव-तनाव, जनसंख्या का बढ़ता घनत्व, सरकारी व्यवस्थाओं की सुस्त चाल और कार्यशैली की काहिली, अजागरुक उपभोक्ता मरीज, अमान्य पद्धतियों का उपयोग आदि इस क्षेत्र को और भी विवादास्पद और अवसादपूर्ण बना रहे हैं। इस दशा पर गंभीर चर्चा व कार्यवाही होना अभी शेष है। यह विषय केवल सरकार, कानून आयुर्विज्ञान संस्थानों, चिकित्सकों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए अपितु विमर्शार्थ जन सामान्य के बीच रखा जाना चाहिए।

प्रजनन तंत्र के वैशिष्ट्य के स्तर पर स्त्री (मादा), पुरुष से जैविक रूप से भिन्न है। अतः स्त्री विषयक किसी भी विमर्श में उसके प्रजनन तंत्र पर वैज्ञानिक चिंतन की व्यापक आवश्यकता है। ऊपर प्रयोग गये तमाम आंकड़ों की नीरसता इसीलिए झेलनी पड़ती है, क्योंकि हमें स्त्री प्रजनन स्वास्थ्य की खास दिशा की ओर इंगित करते हैं। जो स्थिति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परम्परागत नहीं थी, आज उपस्थित हुई है, उसे विकसित, सुरक्षित और पूर्णत: निरापद भी नहीं कहा जा सकता। केवल उसकी दिशा को नियंत्रित और स्वस्ति की ओर उन्मुख किया जा सकता है। अत: जागरुक होकर स्त्री-विमर्श के तहत भी यह विचारित होना चाहिए कि स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन ही स्वस्थ समाज की नींव रख सकता है।

ए-18, न्यूलाईट कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर (राज.)

स्त्री विमर्श, धर्म और महाभारत

● डॉ. नीकी चतुर्वेदी

''औरत बाध्य हुई 'आत्मा' की भूमिका निभाने के लिए। कभी वह गुलाम रही, कभी देवी बनी, किंतु अपने मानव रूप का चुनाव वह कभी नहीं कर सकी।''
-सीमोन द बोवुआर : स्त्री उपेक्षिता

विश्वविख्यात फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द बोवुआर ने सन् 1949 में 'दि सेकेंड सेक्स' लिखी जिसमें उन्होंने स्त्रियों के दमन का इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया। वर्तमान स्वरूप में स्त्री का अपने अधिकारों के लिए आधुनिक राष्ट्र राज्य की उपज है। गर्दा लरनर स्त्री के अनवरत शोषण का एक कारण स्त्री का इतिहास न होना, उसके अपने नायकों का नहीं होना आदि-आदि बताती हैं।[1] स्त्री के दोयम दर्जे के विरुद्ध संघर्ष के लिए यह आवश्यक था कि इस दर्जे को धार्मिक और सामाजिक मान्यता देने वाले इस आधार को तोड़ा जाए जिनमें रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों की प्रभावी भूमिका रही। महाभारत का न केवल सांस्कृतिक क्षेत्र में गहरा प्रभाव है अपितु स्त्री-विमर्श के संदर्भ में भी उसका महत्व कम नहीं आँका जा सकता। भारतीय संस्कृति में महाभारत के विशिष्ट स्थान तथा महाकाव्य के स्त्री पात्रों की प्रतीक के रूप में स्थापना के कारण स्त्री असमानता के पोषण में महाभारत की भूमिका का विवेचन प्रासंगिक है। इतिहास, धर्म और दर्शन के ताने-बाने से महाभारत की कहानियाँ रची गई हैं। उसके पात्रों व घटनाओं को समाज में प्रतीकों की भाँति स्वीकार कर लिया गया है। महाभारत की रचना का श्रेय महर्षि वेदव्यास को दिया जाता है, किंतु भारत में महाभारत के अनेक रूप मिलते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाभारत के विभिन्न रूपों को गढ़ने में धर्म, क्षेत्र, जीवन शैली अथवा काल की सीमाएँ कभी आड़े नहीं आईं। महाभारत की इस व्यापक प्रेरणा के परिणाम के कुछ उदाहरण जैन महाभारत, भीली महाभारत, इण्डोनेशिया की महाभारत और अनेक आधुनिक रूपांतरण हैं। इन सबके अतिरिक्त और उतनी ही या और अधिक महत्त्वपूर्ण जनमानस में रची-बसी महाभारत की कथाएँ क्योंकि उन्हीं के द्वारा सामाजिक प्रतीकों का उदभाव, संवर्धन और सतत पोषण किया जाता है। प्राचीन काल में ही नहीं आधुनिक काल में भी महाभारत के उद्धरणों का प्रचुर प्रयोग किया जाता था। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के आह्वान हेतु महाभारत के उदाहरणों का प्रयोग गाँधी द्वारा प्रत्यक्ष रूप से और पारसी थिएटर द्वारा अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंकने के लिए एक चतुर नाट्य कला की तरह किया गया। अत: महाभारत में स्त्री पात्रों का चित्रण एवं उनके द्वारा स्त्री की छवि का निर्माण और आदर्शों की स्थापना 'स्त्री-विमर्श' के क्षेत्र के साथ-साथ सामाजिक इतिहास को समझने की दृष्टि से अत्यंत सहायक है।

गर्दा लरनर कहती हैं कि स्त्रियों के संदर्भ में पुरुषों ने अपने प्रतीकों को ही पूरी मानवता के प्रतीक और परिभाषा के रूप में पेश किया। कमजोर वर्गों की स्थिति में बेहतरी के लिए यह आवश्यक है कि उनके अपने प्रतीक और परिभाषाएँ हों। स्त्रियों को परंपरागत परिवेश में इस प्रकार का वातावरण और अवसर नहीं मिले हैं।[2] भारत में धार्मिक ग्रंथों की सहायता से पितृसत्तात्मक नजरिए से नारी की एक आदर्श छवि गढ़ने का प्रयास किया गया। स्त्रियों को एक समान वर्ग मानते हुए कुछ सामान्य गुणों या उनकी सभी में समान रूप से पाई जाने वाली विशेषताओं को चिह्नित करने का प्रयास किया गया। महाभारतों के स्त्री पात्रों के मूल्यांकन से पहले इस छवि को समझना आवश्यक है। महाभारत ही नहीं, उससे पूर्ववर्ती व परवर्ती धार्मिक ग्रंथों में स्त्री स्वभाव की चर्चा की गई है। स्त्री को एक सामान्य वर्ग मानते हुए यह चर्चा वैदिक परंपरा के ग्रंथों में ही नहीं वरन जैन एवं बौद्ध ग्रंथों में भी दिखाई देती है। स्त्री स्वभाव को पितृसत्तात्मक समाज के अनुसार को नियंत्रित करने के प्रभाव उपकरण के रूप में 'स्त्री धर्म' की रचना की गई। अत: इस लेख में सर्वप्रथम स्त्री-स्वभाव एवं स्त्री धर्म को समझने का प्रयास किया गया है। जिसके आधार पर विमर्श में महाभारत की भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है। महाकाव्य के प्रत्येक पात्र और प्रत्येक घटना का विवेचन एक अतिव्यापक कार्य है, जो प्रस्तुत लेख की सीमाओं में असंभव है। अत: महाभारत की कुछ प्रमुख नारियों के जीवन की कतिपय घटनाओं, उनकी प्रतिक्रियाओं, मुखरित और मौन स्वरों के द्वारा स्त्रियों की सामान्य स्थिति की खोज इस लेख का लक्ष्य है। महाभारत के स्त्री पात्रों को अनेक विचारकों द्वारा सुदृढ़, स्वतंत्र अस्तित्व की स्वामिनी के रूप में समझा जाता है, जिनकी अति महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है किंतु उनके जीवन में प्रसन्नता, आनंद और उल्लास का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अभाव है। इन शक्तिशाली स्त्रियों की सबल आवाज और दृढ़ अभिव्यक्ति को सामान्य सामाजिक कायदों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए और नारीवादी दृष्टिकोण को प्रेरित करने में उनकी भूमिका का मूल्यांकन करना भी स्त्री असमानता के प्रश्न के उत्तर को ढूँढने के लिए आवश्यक है।

''पुरुषों की ही तरह स्त्री भी इतिहास में कर्ता रही है और समाज की रचना और सभ्यता के निर्माण में स्त्री की भूमिका केन्द्रीय रही है, न कि नगण्य।''[3] अत: अतीत की समझ स्त्रियों की भूमिका की समझ के बिना अधूरी है। इतिहास की संपूर्णता के लिए स्त्री-विमर्श एक आवश्यक क्षेत्र है। इतालवी दार्शनिक क्रोचे का प्रसिद्ध कथन है कि ''समस्त इतिहास समसामयिक इतिहास है।'' इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं है कि वर्तमान समाज में अतीत को बदल डालने की क्षमता है किंतु अतीत को समझने के उपकरणों में इजाफा और दृष्टिकोण में समसामयिकता अतीत का बेहद चित्र प्रस्तुत करने में तो सहायक सिद्ध हो ही सकता है। इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच एक सतत संवाद है जिसके नवीनीकरण अथवा पुष्टि का दायित्व हर नए युग पर होता है। यह ध्यान देने योग्य बिंदु है कि इतिहास, अतीत की घटनाएँ और संकलित इतिहास, इतिहासकारों द्वारा अतीत की घटनाओं की व्याख्या में अंतर है। इतिहास का प्रस्तुतिकरण एक सांस्कृतिक उत्पाद हैं। अत: स्त्री-विमर्श से जुड़ा इतिहास खोजने में प्रयुक्त स्रोतों में निहित पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण, स्रोतों को ही एक समस्या बना देता है।[4] बहुधा उनमें उल्लिखित तथ्यों के निहित आशयों और दूरगामी प्रभावों को समझना अधिक प्रासंगिक और उपयोगी हो जाता है। स्त्री की छवि और उसके दैवीकरण के निर्माण और समाज में स्वीकृत होने की प्रक्रिया को समझने के लिए संकलित स्रोतों का तुलनात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन आवश्यक है। धार्मिक साहित्य और महाभारत जैसे ग्रंथ को समाज में व्यापक स्वीकृति के साथ-साथ श्रद्धा का भाव प्राप्त था। इनके द्वारा स्त्री की आदर्श छवि का प्रतिपादन किया जिससे कि ये निर्देश स्त्रियों के समाजीकरण में, उनकी मनोवैज्ञानिक, अवधारणाओं में समा जाए।

अहिल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा, मन्दोदरी तथा।
पंचकन्याम् स्मरेनित्यम् महापातक नाशकम्।।

आज भी बहुत से भारतीय परिवारों में स्त्रियाँ इस श्लोक के साथ अपनी दिनचर्या आरंभ करती हैं। यह मान्यता है कि इन पंचकन्याओं के नित्य आह्वान से बड़े से बड़ा पाप भी नष्ट हो जाता है। महिलाओं की आदर्श रूप की छवि को दैवरूप में स्थापित किया गया।[5] इन विचारों को सर्वमान्य बनाने के लिए धार्मिक ग्रंथों में वर्णित इतिहास का सहारा लिया गया। धार्मिक मान्यताओं की स्वीकृति महिलाओं की स्थिति और दशा को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण कारक बनी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"महिलाओं के दमन का भारत में अधिक तीव्र रूप देखने को मिलता है, क्योंकि एक बड़े पैमाने पर धार्मिक परंपराओं के सशक्त माध्यम के द्वारा सामाजिक प्रथाओं का निर्माण हुआ।"[6]

वैदिक काल से ही धार्मिक ग्रंथों में स्त्रियों को हीन माना गया है। नारी पुरुष का अपरार्द्ध केवल संतान के जन्म के लिए ही मानी गई, मानसिक और सामाजिक अर्थ में नहीं। ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तम नारी की संज्ञा है- जो पति को संतुष्ट करे, पुत्र को जन्म दे तथा पति की बात के ऊपर जवाब न दे। विवाह के सभी मंत्रों में कहा गया है कि स्त्री चिंतन और कर्म के स्तर पर पति की अनुवर्तिनी हो, पति के चित्त की अनुगामिनी हो। परंतु कहीं भी यह नहीं कहा गया कि स्त्री में भी चित्त नाम की वस्तु है और पति को भी उसके अनुकूल होना होगा।[7] ऐतरेय ब्राह्मण में कन्या के जन्म को अभिशाप कहा गया। मैत्रायणी संहिता में स्त्री को मिथ्याचारिणी, दुर्भाग्यस्वरूपिणी, मदिरा या द्यूतक्रीड़ा की तरह व्यसन मात्र कहा गया है। सर्वगुण संपन्न नारी को भी अधम पुरुष से हीन माना गया है। जैन और बौद्ध धर्म ने स्त्री को भिक्षुणी बनकर स्वायत्त जीवन जीने की स्वतंत्रता तो दे दी परंतु उसके बारे में न तो प्रचलित धारणा बदली और न ही उसे इंसानी दर्जा मिला। बुद्ध भी स्त्री को सारे पापों की जड़ ही मानते थे।

स्त्री स्वभाव के परिप्रेक्ष्य में महाभारत में स्त्री को हठी, अविवेकपूर्ण, ईर्ष्यालु, कटु, अनियंत्रित वासनाओं से युक्त आदि नकारात्मक विशेषणों से लैस किया गया है। महाभारत के शांतिपर्व में लिखा गया है-

यदि जिह्वा सहस्यं स्याजीवैच्य शारदां शतम्।
अनयं कर्मा स्त्री दोषाननुक्त्वा निधमं व्रजेत।।

गीता के अध्याय नौ के बत्तीसवें श्लोक में जन्म से ही स्त्रियों, वेश्यों और शूद्रों की योनियों को पाप योनियों की संज्ञा दी गई है। इन योनियों में पैदा होना (जो अपने हाथ में नहीं है अपने आप मानव योनि इंसानी दर्जा) पाने की राह में अवरोध माना गया। हर जाति की स्त्री को योनि के अनुसार वेश्य और शूद्र के समकक्ष रख दिया गया। जिस प्रकार समाज में ऊँची जाति के पुरुषों के लिए हीन समझे जाने वाले काम वेश्य और शूद्र करते थे, उसी प्रकार परिवार के भीतर पुरुषों के लिए हीन समझे जाने वाले काम स्त्रियाँ करती थीं।[8] इस प्रकार समाज और परिवार के भीतर काम का विभाजन सामाजिक स्तर का द्योतक था। धार्मिक परंपराओं का निर्माण और संप्रेषण तथा हस्तांतरण 'पुरुषों के द्वारा, पुरुषों के लिए किया गया।'[9]

महाभारत के संदर्भ में स्त्री-विमर्श के दो पहलुओं को विचारक उजागर करते हैं। एक तरफ तो महिलाओं को सामान्य रूप से और चंचल बताया है तो दूसरी ओर मिथ्या और अस्थिर आचरण के आरोपों को व्यास की नायिकाएँ निराधार सिद्ध करती हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाभारत के अनुशासन पर्व में स्त्री स्वभाव के आवश्यक तत्त्वों को बताया गया है। अष्टावक्र के उपाख्यान के द्वारा भीष्म के द्वारा बताया गया है कि ''स्त्रियाँ सब पापों की जड़ हैं। उन्हें स्वयं पर भी आस्था नहीं है। उनमें न कोई गुण है, न कोई धर्म। वे अस्थिर और स्वार्थी हैं। वे अवसरवादी हैं और अपनी इच्छाओं की पूर्ति का कोई भी अवसर नहीं छोड़ती हैं। वे अपनी पापेच्छाओं की तुष्टि के लिए किसी भी वस्तु का त्याग कर सकती हैं।'' इसके पश्चात भीष्म स्त्रियों की अनियंत्रित यौन पिपासा का वर्णन करते हैं।[10] यह उद्धरण स्त्रियों क़ो वर्ग के रूप में नकारात्मक व विश्वास नहीं करने लायक बताता है। महाभारत में ऐसे अनेक प्रकरण हैं, जब स्त्री पात्रों को स्त्री छवि के निर्माण व निरंतरता बनाने के लिए माध्यम के रूप में प्रयोग किया गया है। स्त्री स्वभाव की ये विशेषताओं जाने-अनजाने समाज के हर वर्ग को प्रभावित करने में सफल हुई हैं। उदाहरण के लिए युधिष्ठिर कुंती द्वारा कर्ण की असली पहचान छुपाए जाने से उद्विग्न होकर समस्त नारी जाति को शाप देता है कि भविष्य कोई भी स्त्री कोई बात गुप्त नहीं रख सकेगी। इस उक्ति को लेकर ह्रास-परिहास चलता ही रहता है। बद्रीनाथ चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'दी वीमेन ऑफ महाभारत' में स्वीकार किया है कि स्त्रियों के संवेदनशील प्रस्तुतिकरण के बावजूद इस घटना के वर्णन में वह टिप्पणी करने वाले थे कि क्या यह शाप आज तक काम कर रहा है। एक साथी के विरोध करने पर चतुर्वेदी ने सहर्ष यह टिप्पणी हटा दी और उदारतापूर्वक अपनी पुस्तक की भूमिका में अपनी भूल स्वीकार भी कर ली।

स्त्री स्वभाव का संकीर्ण, पूर्वाग्रहों या दुराग्रहों से युक्त चित्रण महाभारत या ब्राह्मण साहित्य तक ही सीमित नहीं है। जातकों का स्वर भी अनुशासन पर्व से अलग नहीं है। स्त्रियों की जन्मना चंचलता और कामुकता तथा अनियंत्रित यौन पिपासा उनका नियंत्रण और भी दुष्कर बनाती है। स्त्री के लिए इस दुराग्रह को समाज के पितृसत्तात्मक आधार ने और मजबूत किया और स्त्री धर्म के नाम पर उसे दोहरे नैतिक मापदंडों के तले दबा दिया। स्त्री की कुलटा मानसिकता को प्रचारित तथा प्रसारित करने का उद्देश्य उसे चारों ओर से कमजोर कर व्यवस्था के हाथों की कठपुतली बनाना था।

प्रारंभिक स्तर पर स्त्री धर्म और स्त्री स्वभाव में एक द्वंद्व नजर आता है। महाभारत में इस समस्या को स्वीकार किया गया है कि ''स्त्री चाकू की धार, विष, सर्प और अग्नि सब मिलाकर एक है।''[12] तो दूसरी ओर स्त्री धर्म में स्त्री अपने सभी स्वार्थ तो क्या मानवीय वृत्तियों का भी त्याग करके पूर्णरूपेण पति व उसकी इच्छाओं की अनुगामिनी हो जानी चाहिए। अनुशासन पर्व में उमा स्त्री धर्म के विषय में पूछे जाने पर शिवजी को बताती हैं-''पति ही स्त्री का ईश्वर है, मित्र है, सहारा है।'' वन पर्व में नल दमयंती से कहता है कि ''कुसमय में पुरुष के लिए उसकी स्त्री से श्रेष्ठ कोई मित्र नहीं है।'' इन आदर्श धारणाओं का प्रतिपादन पौराणिक स्त्रियों के द्वारा किया गया। स्त्री का कुलटापन या नकारात्मक चित्रण एक माध्यम था। आदिकाल से ही स्त्री को उसकी नकारात्मक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रवृत्ति के लिए धिक्कारा गया। स्त्री धर्म के द्वारा उसे अपने अंदर प्राकृतिक रूप से निहित कुलटापन से उबरने का मार्ग सुझाया। यही मार्ग भारतीय नारी का सदियों से आदर्श बन गया। इस भूमिका में खरी उतरने वाली स्त्री को पूजनीय बना दिया गया और दूसरी त्याज्य बता दी गई।

स्त्री धर्म के रूप में आदर्श सिद्धांतों की स्थापना का वास्तविक उद्देश्य इस रूप को व्यवहार में रूपांतरित करना था। इसके ठीक वितरीत यह कहा जाता है कि महाभारत के स्वयं के पात्रों का व्यवहार इन सिद्धांतों से मेल नहीं खाता है। महाकाव्य का स्वर मुखरित हो स्त्री स्वभाव के नाटकीय यथार्थ और स्त्री धर्म के दैवी आदर्श का समर्थन तो करता है किंतु उसके पात्र इस आचरण संहिता के प्रति अपनी अपनी अभिरुचि और परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित कर लेते हैं। अत: स्त्री स्वभाव और स्त्री धर्म की महाभारत में वर्णित अवधारणा का पात्रों के स्वभाव और व्यवहार से भिन्न है। आदर्श नारी की छवि तथा उनके लिए पितृसत्तात्मक संहिता का निरुपण अगर पुरुषों की कृति है तो इन जड़ आदर्शों में से स्त्री स्वर को अनावृत्त करना महिलाओं का कार्य रहा है। पौराणिक स्त्रियों को समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण, क्योंकि उनकी छवि के द्वारा नारी के लिए आदर्शों की रचना, निरंतरता बनाई गई और आधुनिक पुनर्व्याख्याओं के द्वारा इसका विरोध या पुनर्रचना का प्रयास किया गया है।

आधुनिक नारीवादी व्याख्याओं ने पुरुष केंद्रित पूर्वाग्रहों को चुनौती देते हुए महाभारत में वर्णित स्त्री पात्रों को पुरुषों की कृति में से ही पुनर्व्याख्या द्वारा जीवंत बनाने का प्रयास किया है।[15] ईरावती कर्वे द्वारा 'युगांत' में महिलाओं पर थोपी गई असमानता और सामाजिक व्यवस्था में निहित नारी शोषण के प्रावधानों को उजागर किया गया। श्योली मित्रा के दो नाटकों में महज एक नारी पात्र द्वारा सशक्त मंचन किया गया। 'नाथवती अनाथवत' और 'कथा अमृत समान' में महाभारत को एक अलग परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया। कविता शर्मा की पुस्तक 'महाभारत की रानियाँ' और बद्रीनाथ चतुर्वेदी की 'महाभारत की नारियाँ' इस कड़ी को आगे बढ़ाती हैं। केविन मैकग्रॉथ ने कुंती, गांधारी, दमयंती, सावित्री, अंबा और शकुंतला के विवेचन के द्वारा क्षत्रिय धर्म के संदर्भ में स्त्रियों की भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है।

अनेक अवसरों पर महिलाओं के प्रभावी, सशक्त इरादे और कार्य दिखाई देते हैं, किंतु उनके जीवन में सुख और उल्लास की अपेक्षा नैराश्य और उदासी का भाव प्रवाहमान प्रतीत होता है। महाभारत की नारियाँ स्वयं को अकेला पाती हैं, जैसे साम्राज्ञी सत्यवती, गांधारी, कुंती, माद्री या द्रौपदी। 'नाथवती अनाथवत' का विशेषण द्रौपदी के अकेलेपन की पराकाष्ठा को अभिव्यक्ति करता है और उसके जीवन का हिमालय की यात्रा में एकाकी अंत भी अत्यंत मार्मिक। एक आधुनिक व्याख्या में इस अवसर पर द्रौपदी कहती है–'स्वर्ग भी पुरुषों के लिए है'[16] चित्रा बनर्जी दिवाकरुणी के अनुसार–"...ऐसा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं है कि महाभारत में सशक्त नारी पात्रों का अभाव है...परंतु उनके विचार और कामनाएँ रहस्य बनी हुई हैं, उनकी भावनाओं का चित्रण वहीं तक सीमित है, जब तक वह पुरुषों के जीवन को प्रभावित करती हैं, उनका जीवन पिता, पति, भ्राता या पुत्र को समर्पित था।''[17] केविन मैकग्रॉथ स्त्रियों के कर्मों का आधार क्षत्रिय संहिता को मानते हैं। स्त्रियों की संपूर्ण शक्ति इस संहिता को संरक्षण की ओर निर्देशित रही। कुंती की सफलता और गांधारी की असफलता का यही एकमात्र निर्णायक तत्त्व था।

महाभारत की मुख्य नारी पात्रों की सशक्त चुनौतियों और प्रभावशाली कृत्यों को नकारा नहीं जा सकता मगर उनके प्रेरक तत्त्वों को पितृसत्तात्मक संहिता के संदर्भ में परीक्षण स्त्री-विमर्श के लिए उपयोगी है। इन पात्रों द्वारा पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती तथा नारीवादी दृष्टिकोण को सशक्त करने की संभावना को भी खोजना आवश्यक है। क्या उनके कदम किसी संकीर्ण स्वार्थ के पराधीन थे या सामाजिक स्तर पर स्त्रियों के प्रति संवेदनशीलता आहूत करने में सहायक थे।

कुंती के जीवन में निजी इच्छाओं, कामनाओं और भावनाओं का अभाव था, उपेक्षा का जीवंत उदाहरण है। द्रौपदी की अदमित वाणी सामाजिक व्यवस्था के विद्रोह में प्रतीत होती है। युधिष्ठिर की युद्धरत होने में अन्यमनस्कता को द्रौपदी की कठोर वाणी धिक्कारती है। इस सबके बावजूद द्रौपदी भी सामाजिक व्यवस्था की बेड़ियों से मानसिक स्तर पर मुक्त नहीं है। सत्यभामा द्वारा परिहास में पाँच पतियों को प्रसन्न रखने के गुप्त मंत्र को जानने की जिज्ञासा के उत्तर में द्रौपदी स्त्री धर्म के पारंपरिक आचरणों का ही वर्णन करती है। अमर्त्य सेन के अनुसार ''शास्त्रीय ग्रंथों की स्त्रियों के तर्क-वितर्क उनकी पारंपरिक शांत छवि से भिन्न है।''[19] भारवी कृत किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उकसाने से पहले स्त्री धर्म से विमुख होने के लिए क्षमा माँगते हुए, अपने क्रोध और अपमान को अपनी सीमा को लाँघने के लिए मजबूर करने के लिए उत्तरदायी ठहराती है।[20]

अत: द्रौपदी के विद्रोही स्वर स्त्री की पारंपरिक छवि को तोड़ने के प्रयास नहीं करते। महाभारत में सशक्त नारी पात्रों की उपस्थिति के बावजूद नारीवादी चेतना का अभाव है। यह कहा जा सकता है कि पितृसत्तात्मक सीमाएँ सिर्फ महाभारत में ही निहित हैं, जिनकी पुनर्व्याख्या एक सतत और संभावनाओं से परिपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समाज में सशक्त नारी की छवि का निर्माण निश्चित तौर पर किया जा सकता है।

व्याख्याता
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था

• विजय वर्मा

(पिछले दिनों 'मीमांसा' पत्रिका में मैंने जयपुर में सक्रिय तीन वृद्धजनों की रचनाशीलता के बारे में लिखा–उनमें पहला नाम विजय वर्मा था था। मैंने सभी के विषय में अत्यंत संक्षेप में लिखा था। उसे पढ़कर 'मड़ई' के यशवाची सम्पादक डॉ. काली चरण यादव ने पहले मीमांसा के सम्पादक राजाराम भादू को, फिर मुझे फोन किया। यद्यपि विजय वर्मा के आलेख 'मड़ई' में छपते रहे हैं तथापि उनके विषय में मेरी संक्षिप्त टिप्पणी को पढ़कर वे बहुत अभिभूत हुए कि उन्होंने मुझे 'मड़ई' के लिए विजय वर्मा से लम्बी बातचीत करने का 'होमवर्क' भी दे दिया। उन्हें यह पता ही नहीं था कि विजय वर्मा पूर्व आई.ए. एस हैं तथा उनके पास अभी भी मारूति 800 कार है जिसे वे खुद ही ड्राइव करते हैं तथा जयपुर का सांस्कृतिक केन्द्र 'जवाहर कला केन्द्र' विजय वर्मा की कल्पना का साकार रूप है। दोष यादव जी का नहीं है क्योंकि उनका वास्ता तो उन नौकरशाहों (आई.ए.एस) से पड़ा है जो बराबर अपने पद के आतंक को याद दिलाते रहे हैं तथा यह भी सूचना देते रहते हैं कि किस सन् में उन्होंने कौन सी कार खरीदी थी।

दरअसल विजय वर्मा एक यशस्वी नौकरशाह रहे हैं पर उनके कला प्रेमी तथा निराभिमानी व्यक्तित्व ने उन्हें कभी बड़बोला नहीं बनाया। उनके पास दुर्लभ पुस्तकों, कला–कृतियों, संगीत के कैसिटों, फिल्मों की सीडियों, लोक संगीत तथा शास्त्रीय संगीत के रिकार्डों का अकूत भंडार है। मेरी चिन्ता है कि उनके इस अनमोल संग्रह को राज्य सरकार राष्ट्रीय धरोहर के रूप में संरक्षित क्यों नहीं करती? विजय वर्मा से मिलने का अर्थ होता है कला के विविध रूपों की सरिता में अवगाहन करना और रस से सराबोर होना। विभिन्न कला रूपों की इतनी गहरी समझ बहुत कम लोगों को होती हैं।

लेकिन उनकी सरलता इतनी गहरी है कि उनकी थाह पाना आसन नहीं है। मैंने ही उनसे कहा कि आप अपनी आत्मकथा लिखें तो उन्होंने कहा, 'हेतुजी–यह मेरे बसका नहीं है। अब मैं उम्र के इस पड़ाव पर हूँ जहाँ अधिक श्रम नहीं हो पाना।' अब मैं कैसे कहूँ कि मैं भी लगभग उसी पड़ाव पर हूँ। मैंने उनसे कहा कि चलिए, आपकी जिन्दगी पर मैं आपसे बात करता हूँ भले ही अव्यवस्थित हो, बाद मैं उसे तरतीब दे देंगे। वह काम अभी शुरु नहीं हो पाया है। पर आधी शुरुआत इस अंश में हो रही है जो विजयवर्मा जी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ने ही लिखा है। मैं इसे इसलिए भी प्रस्तुत कर रहा हूँ कि इस काम को पूरा करने की इच्छा हम दोनों में तीव्रता से जगे। फिलहाल पाठक इस छोटे से अंश का मज़ा लें। -हे.भा.)

जब हेतुजी ने पुस्तक का नाम 'नालायकनामा' सुझाया तो मैं तुरन्त सहमत हो गया क्योंकि जीवनवृत्तात्मक पुस्तकों में कम से कम शीर्षक का तो सत्य से कोई नाता हो, किन्तु जब मैंने पुस्तक का एवज़ी नाम ''उर्फ एक था विजय वर्मा'' रखने का प्रस्ताव रखा तो पंडित जी, अड़ गये -वे भी सत्याग्रही निकले -बोले, वाह, 'था' कैसे लिख दें-आप तो शैतान के फजल से, अभी जिन्दा हैं हमें बोर करने के लिए! इस पर मैंने फिल्मी स्टाइल में कुछ, ''भय्ये, ये जीना भी कोई जीना है, जीवन का आदमखोर शेर तो मुझे कब का खा चुका''-नुमा गहन-गम्भीर बातें कहीं। भूत होते हुए भी वर्तमान में बोलने की बात तो वैसी ही है जैसे उर्दू का शाइर मरने के बाद भी शाइरी करता रहता है-वो मेरी तुर्बत पे, आये तो मैं मारे ज़ौक के उठकर खड़ा हो गया था-इत्यादि। (शाइर को गहरा गाड़ने के पीछे दोनों ही उद्देश्य रहते हैं।)

चाहे आत्मकथा हो चाहे किसी और द्वारा लिखित किसी की जीवन गाथा हो- देख लीजिए, दोनों में था पर तान टूटती है- था इज द् लास्ट वर्ड, ऑर रॉदर, लैटर इन बोथ, यूसी-मैंने रुआब झाड़ने की गरज से, अंग्रेजी मुहावरा फटकारा। इस पर जैसे सेंट स्टीफैंस में पढ़ा, आदमीनुमा दोपाया ''पी.जे.'' (पुअर जोक, सस्ता मज़ाक) बोलता है, बिल्कुल उसी अंदाज में हेतुजी बोले-बकवास। संपादक जो ठहरे, इस भारतभू के पटल पर एक ज़माने में ''साप्ताहिक हिन्दुस्तान'' नामक एक उच्च कोटि की मसालदानी पत्रिका हुआ करती थी जिसके संपादक स्व. बांकेबिहारी जी भटनागर हुआ करते थे, सो, उस बांकेयुग से ही, भारी छपास का मारा मैं, संपादकीय ''बकवास'' सुनता आया, सुआदी लेखक हार कैसे मान लेता, बोला, वो उस शरद जोशी के नाटक का उदाहरण ही ले लीजिए - ''एक था गधा उर्फ, अलादाद खां'' न होकर नाटक का नाम एक है गधा इत्यादि होता तो कितने शो हो पाते उसके भला, खुद नाटक, छपने के साथ ही, एक था हो जाता!

आप सिर्फ नाटक के शीर्षक की बात क्यों कर रहे हैं, हेतुजी बोले, उसके कथ्य को क्यों भूलते हैं: इस शीर्षक के मान की रक्षा के लिए, नवाब की शान की रक्षा के लिए अच्छे भले अलादाद खाँ को था होना पड़ता है कि नहीं? नियम ही यह चला आया है: अमर होना है तो पहले मरो, किसी जीवित को, अमर कह कर देखिये-हँसेगे लोग आप कह सकते हैं कि आदमी अलादाद को तो मारना पड़ा लेकिन गधे अलादाद ने तो शुरू में ही मर कर नाटक के शीर्षक को जमीन दे दी, लेकिन सारे गधे भी समय से था होने जितनी बुद्धिमत्ता- सदाशयता कहाँ दिखा पाते हैं? (यहां, अब, आप अपना ही उदाहरण ले लीजिए-यह प्रकट रूप से कहना हेतु जी टाल गए) कृष्णचंदर की ''एक गधे की आत्मकथा'' में इतनी कुटम्मस के बाद भी गधा मरता कहां है बल्कि बाद में उसकी वापसी ओर हो जाती है,...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकिन कृष्णाचंदर तो गधे के बहाने अपनी कथा कह रहे वे और वे गद्य लेखक थे, शाइर नहीं, मैंने कहा, और जहाँ तक बात वापसी की है, बाजार की मांग पर तो मरे हुए शरलौक होम्स तक को जिंदा करना पड़ा था गधे की कौन बिसात! लेखक का दिमाग लाख प्रगति परस्त हो, पेट तो उसका भी चपाती परस्त ही रहता है।

लेकिन इस तमाम गधा सरित्सागर के बावजूद बात बन नहीं पा रही थी। तब मैंने तुरूप का पत्ता फेंका- पाठक तो ''था'' का संबंध पुस्तक के प्रकाशन की तिथि से जोड़ेंगे और चूंकि भारत में पुस्तक्-प्रकाशन, यदि लेखक कड़का हो तो, काफी विलम्ब से होता है इसलिए, यदि, आप लेखन में विलम्ब करके मेरी मदद नहीं करेंगे, तो भी, प्रकाशक की कृपा से मेरी बात रह जायेगी। मैं शैतान को हाजिर-नाजिर जान-कर कहता हूँ-ईश्वर मेरी रक्षा करें। नहीं, नहीं, कहना चाहिए- ईश्वर मेरी रक्षा न करके मेरे वायदे की रक्षा करें।

लेकिन इस पर भी बात नहीं बनी। तब हथियार डालते हुए मैं बोला- भई, देर या सबेरे सभी को 'था' होना है, यहाँ सदा 'है' बना रहने को कौन, आया है? इसलिए किसी जीवित को है की बजाय था कह देना कोई तात्विक गल्ती तो है नहीं, एक छोटी सी व्याकरण-संबधी भूल भर है और भाषा की स्वच्छंदता और बोलने वालों की निर्द्वंद्वता के इस युग में उसके बारे में क्या सोचना...इसके विपरीत, यह ''था'' हमारी दिली कामना, शीघ्र दफा हो, प्रियवर, का भी ईमानदार, साहित्यिक प्रकटीकरण है।

लेकिन आखिरकार मेरी गोटी फिर बैठी तो उसी शुरूआती नुक्ते पर कि 'एक था विजय वर्मा' कितना 'कैची' और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कितना सुकून देय है जबकि एक है विजय वर्मा एक ओर तो निहायत फुसफुसा है और दूसरी ओर सुनने-पढ़ने वाले को आशंकित बनाता है-अच्छा, तो अभी जिंदा है मरदूद...

फिर, बात के व्यावसायिक पहलू ने भी अपना रंग दिखाया: वो ''था'' कितना दबंग है-इतना ''पंच'' है इसमें कि मिठाई के खाली डिब्बे पर बस इसे छाप दो और उसे पुस्तक की तरह बेच लो। (वैसे भी बहुत सी पुस्तकें बस डिब्बा ही तो होती हैं।) हेतुजी ने प्रकाशक से बात की तो वह उछल पड़ा-आहो जी, बाश्शाओ आप तो बस लिख डालो, जरूरी हुआ तो सुपारी दे देगें...

लेकिन मुझे पूरा भरोसा है कि इसकी नौबत नहीं आयेगी। बात यह है कि मुझ से पाठकों का दुख नहीं देखा जाता बात चाहे मेरे लिखे की हो चाहे मेरे बारे में लिखे की। (वैसे भी बुद्धिमानी का तकाजा है कि आत्मकथा या उस जैसी चीज छपने के पहले ही मर लो-लोग पढ़ें और मारें से बेहतर है कि लोग पढ़ें और मरें।) नौबत आई भी तो सुपारी लेने वाला राजी नहीं होगा-कहेगा, कोई ढंग का काम बताओ यार! कोई प्रकाशक हो तो बोलो...न हो तो संपादक भी चलेगा...।

'अनहद', मीरा मार्ग, मानसरोवर, जयपुर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानियाँ

छिद्दमी

● विजय

मृदुला ने देखा कि बड़े से ऊँचे तख्त के नीचे पक्के चबूतरे पर चटाई डाले सो रहा था या आराम कर रहा था। उसके दोनों हाथ चबूतरे के नीचे थे और हथेलियों व उँगलियों का रंग पक्का कत्थई था क्योंकि दिनभर वह पान लगाता था। तख्त के ऊपर एक चौड़ी-चौकी रखी थी जिस पर गीला लाल कपड़ा बिछा हुआ था। उसी कपड़े से चौकी पर रखे पान ढँके हुए थे। चौकी की बगल में ही बाल्टीनुमा बर्तन से भी सादे पान भीग रहे थे। चौकी के नीचे हंडिया नुमा बर्तन में कत्था चूना था जिसकी बगल में अनेक डिब्बे रखे थे, जिनसमें मसाला, तरह-तरह की खुशबू व तम्बाकू आदि भरे थे। कौनसी खुशबू ग्राहक को चाहिए या किस नम्बर की तम्बाकू या किमाम, यह तरतीब सिर्फ छिद्दमी को ही पता रहती थी। हाँ, चटनी की बोतल वह हमेशा पानी भरी कटोरी में रखता था। मीठा पान खाने वालों के पान में व थियेटर गुलकंद डालकर डिब्बा अच्छी तरह से बंदकर पोंछ भी देता था गमछे से, जिससे चींटियाँ आकर्षित न हों। दोपहर एक बजे से तीन बजे तक छिद्दमी तख्त के नीचे पक्के चबूतरे पर आराम करता। लड़का किशोर इस बीच दुकानदारी सँभालता। लड़के के लिए समय की यह पाबंदी बंदिश की तरह कटती। ज्यादातर पान खाने आने वालों को लौटा देता...फादर सो रहे हैं। हाँ, खुदरा सिगरेटें और पैकिट फटाफट बेचता और नोट सफारी की जेब में डालता जाता।

अठारह की उम्र से नीचे वालों को तम्बाकू व उससे बनी चीजें मना हैं मगर अठारह से कम के लड़के और दो एक लड़कियाँ उस वक्त जरूर आते और पान के थड़े वाले से सिगरेट व माचिस लेकर जलाते। किशोर मुस्कुराता और लड़कियों को दाना डालने की कोशिश भी करता मगर इस समय उन लड़कियों की दृष्टि में वह एक पानवाला ही रहता, जिसे लिफ्ट देना लड़कियाँ अपनी तोहीन समझतीं। तख्त के नीचे की तख्ती हिलती रहती जिसकी कम वय के लड़के-लड़कियाँ परवाह भी नहीं करते।

तख्त की बगल में पीपल का पेड़ चारों तरफ छाया बिखेरता रहता और उसके नीचे बने गोलाकार चबूतरे के खोखल में बनी एक अलमारी नुमा जगह में छिद्दमी सिगरेटें रखकर ताला लगा देता। चबूतरे पर चटाई बिछी रहती कि भद्रलोक भी बैठ सकें। गर्मियों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
में बर्फ के डिब्बे जैसे फ्रिज में रखी ठण्डी बोतलें पीने वाले चटाई का खूब इस्तेमाल करते। रहमत फटाफट बोतलें निकाल ग्राहकों को थमाता रहता। तेरह-चौदह साल का रहमत खूब उस्ताद छोकरा है। सुबह दस से रात आठ तक वह इशारा पाते ही चरस-गाँजे या कोकीन से भरी सिगरेटें सप्लाई कर आता और दाम ले जाता। ऐसी सिगरेटें बेचना छिद्दमी की मजबूरी है। उनके पीने वालों से हुज्जत क्या कर छिद्दमी ठिया सँभाल सकता है। बड़े घरों के लड़के-लड़कियों के एक फोन पर पूरा पुलिस थाना उमड़ कर छिद्दमी की ठुकाई में लग सकता है। पैसे और रुतबे की ताकत ही तो देश की डेमोक्रेसी सँभाले हुए हैं। जनतंत्र का ठेका उन्हीं ने तो संभाल रखा है।

मृदुला हिन्दी-अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाले दो राष्ट्रीय अखबारों की सूत्र चीफ हैं। ग्रीन पार्क होते हुए वह कनाटप्लेस के दफ्तर में अपनी कार से पहुँचती है। आज सिरदर्द और बदन दर्द की वजह से जल्दी लौट आई है अन्यथा रात ग्यारह बजे के करीब थड़े पर पहुँचती है। खाने के बाद के लिए मीठा पान बँधवाती है और ट्रिपल फाईव की बीस सिगरेटों का पैकिट खरीदती है। उस वक्त बाजार की आम दुकानें बंद हो जाती हैं मगर रेस्त्राँ में जगरमगर होती रहती है। बेकरी वाले के पास ग्राहक पहुँचते रहते या छिद्दमी का थड़ा लोगों से घिरा रहता। मगर छिद्दमी उसे ज्यादा देर नहीं रोकता। मीठा पान और सिगरेट का पैकिट पकड़ा कहता-''आप जाओ मैडम जी।''

उसके जाते ही कोई ग्राहक फट पड़ता-''हमें क्या फालतू समझ रखा है छिद्दमी कि आधा घंटे से रोके हो।''

खीसें निपोर कहता छिद्दमी-''आप तो माई बाप हैं। अरे, अखबार वाली है पर है तो लड़की। उलटफेर कर लिखने की ताकत है उसमें पर है तो औरतजात। कलम से लिख दिया तो क्या रात देर तक हमारी दुकान लग सकेगी? उस पर औरत इस शहर में कहाँ महफूज है? यही सोचकर फटाफट रवाना कर दिया।''

ग्राहक को पान पकड़ा एक बँधा बीड़ा भी थमा देता है छिद्दमी। ग्राहक कहता है-''तुम ठीक कहते हो छिद्दमी। इसलिए रात अकेला पान खाने आता हूँ। वाईफ जब जिद करती है तो मना कर देता हूँ। ये औरतें जाने कब समझदार होंगी, कल ही तो आईएनए के सामने कार में खींच ले गए लड़की को लड़के पटक दिया झाड़ियों में काम खत्म करके।''

दूसरा पास खड़ा अधेड़ ग्राहक कहता है-''हम 1981 में दिल्ली आए थे फादर के ट्रांसफर पर। तब दिल्ली सेफेस्ट थी और चीपेस्ट भी। हमारे घरवाले गर्मियों में बाहर सोते थे फिर 1984 में इन्दिरा गाँधी का मर्डर क्या हुआ कि शहर बिल्कुल यूरोप हो गया। महँगाई चली नहीं अब दौड़ने लगी है। राजीव गाँधी और नृसिंहराव क्या आए कि सड़कों पर जेम लगने लगा। अब तो मेट्रो के होते हुए न एसी बस में न नॉन एसी में जगह रहती है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''इक्कीसवीं सदी का मतलब समझो भाई। इमारत और कार। पूरे देश को ये ही दो चिंताएँ रह गई हैं। बैंक कर्ज लेने वालों का इंतजार करती रहती है, कुर्ता-पाजामा पहने व्यर्थ कहता है।''

रहमत आठ बजे जा चुका था। अब गाँजे व चरस की सिगरेटें मनोहर की जेब में थीं। ठीक ग्यारह बजे ऐसी सिगरेट एक डिब्बे में मनोहर बंद कर दरख्त के खोखल में रख देता है। जगह को बस रहमत जानता है।

एक इतवार आराम के लिए वक्त होते हुए भी मृदुला बाहर घूमने निकल पड़ती है। रास्ते में हरी घास के बिछोनेदार खण्डहर के पास से गुजरती है। मानती है कि मुगल शहंशाह ही नहीं उनके जाने कितने वफादार चाकर किले जैसा घर बनाकर रहते थे। क्योंकि जगह ऐतिहासिक हो सकती है, इसलिए आर्कलाजिक विभाग ने खण्डहर के चारों तरफ काँटेदार तार लगा रखे हैं। अंदर सफाई कर्मचारी और माली चाबी से लोहे का द्वारा खोलकर जाते होंगे। रास्ता चलने वाले देखकर भी अनदेखा करते होंगे। गाड़ी फर से दूर रोक पान खाने मृदुला चल पड़ती है। सवा तीन बजा था। पूछती है छिद्दमी से- ''रहमत दिखाई नहीं देता?''

''टंकी के नीचे सिगरेटें सप्लाई करने गया है।''

''चरस, भाँग या दूसरी नशीली चीजों से भरी न?'' मृदुला कहती है।

''आप से क्या छिपा है मैडमजी। न बेचें तो चरसी लौंडे हमारा ठिया भी उठवा देंगे।''

''मैं अखबार में लिखूँ?''

''मैडम जी, हमारी दुकान बंद हो जायेगी। कोई दूसरा ठिया ले लेगा और वही करेगा जो हमें करना पड़ रहा है। वैसे किसी न किसी अखबार में तो आलेख आता ही रहता है। पुलिस छुटभईयों को पकड़ सजा दिला देती है पर वो नेता क्या पकड़ा जाता है थोक व्यापार करता है। क्यों वे लड़के पकड़े जाते हैं जिनके बाप धन्ना सेठ या सरकारी अफसर होते हैं?'' अब तो चोरी की तफ्शीश भी पुलिस नहीं करती है। कह देती है...ड्रग लेने वाले का काम है! कौन लेता है तुम्हारे यहाँ ड्रग।

''छिद्दमी तुम्हारी आमदनी हजार-बारह सौ रोज से कम नहीं हैं। तुम्हारा नाम तो छिद्दमी की जगह धनपत होना चाहिए।''

मुस्कराया छिद्दमी-''मैडम जी, पाँच हमारे से पहले भैया के हुए पर एक भी जिंदा न बचा। जब हम हुए तो टोटके में हमें बुआ को दे दिया गया। गरीब घर था। छेदवाले पैसे ही घर में थे। कुछ छिदाम भी पड़े थे घर में। चार छिदाम अपनी बहन को देकर हमें वापस खरीद लिया और हमारा नाम हो गया छिद्दामचंद।''

''पंडित ने भी छ से नाम निकाला होगा'' मृदुला हँसते हुए कहती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''न मैडम भी। गरीब गुरबों के झोपड़े में न झाँकते थे अंडित-पंडित भी। उस वक्त भी पंडित बुलाने के लिए रोकड़ चाहिए थी। पाँचवी बनारस के गाँव दौलतपुरा में पास की। फिर इलाहाबाद आ गए जहाँ बप्पा टोकरी में रखकर पान बेचा करते थे। फिर उनके चाचा ने लिखा कि वे गाँव लौट रहे हैं। चाहो तो छिद्दमी को दिल्ली हमारे घर में रहने भेज दो। यहाँ धंधे की जगहों की कमी नहीं है। हमारी शादी हो चुकी थी। छद्दमो को लेकर दिल्ली आ गए। सफदरजंग के मरीजों के साथ वालों के लिए जो धर्मशाला बनी है उसी के पास हजारों झुगियाँ पड़ी थी। हम चाचा के घर रूपी झुग्गी को देखते रहे। तब चाचा ने समझाया, गाँव के घर की बात भूलनी होगी। जैसा देश वैसा भेष। अरे दिल्ली में मकान बनवाने के लिए ढेर-सा कलदार चाहिए। हम थे कम्पनी के चौकीदार। जो पाते घर में भेज देते थे। यहाँ तो बस विश्राम के लिए ये झुग्गी हमें मिल गई वह क्या कम है? इसके लिए रिश्वत देकर राशन कार्ड बनवाना पड़ा और मुखिया को थाने व बिजलीघर पहुँचाने के लिए हर माह रुपया देना पड़ता था।''

''हम कहाँ काम शुरू करें? बाबा से पूछा था।''

''बैठ जा आईएनए के पास जो नाला है वहीं। एक दिन पटकर पक्का हो जाएगा नाला और ऊँची इमारतें बन जायेंगी। धंधा चमक जाएगा। और वही हुआ मगर पूरे दस साल धरती पर रगड़ना पड़ा तब कहीं जाकर ये ठिया अलॉट हुआ और तख्त डाल सका। उसी झोपड़पट्टी में पहले बैर रघुवीर का जन्म हुआ।''

''अब तो अर्जुन नगर में तुम्हारी कोठी है।''

''सब आप लोगों की मेहरबानी है। पर जब रघुवीर हुआ तो पंडित न बुला सके। वहीं लड़की हुई जो चार साल की होकर मर गई। तब ये किशोर आया कोठी में। खूब चोंचले निभाए हमारी घरवाली छज्जो ने। हवन कराया, छठी पुजवाई, सत्यनारायण की कथा हुई और जन्म-पत्री भी बनी। पंडित जो झोपड़पट्टी में आता था वह सीधा भर लेता था मगर किशोर के होने पर दक्षिणा तो भरपूर वसूली पंडित ने डटकर तीन बेर भोजन भी किया। आशीर्वाद पिटारा खत्म होने पर ही गया। टपरा स्कूल, फिर गवर्नमेंट स्कूल और फिर कॉलेज गया रघुवीर, पर किशोर तो शुरू से ऊँचे अंग्रेजी स्कूल में गया पर बारहवीं में अटका रहा। रघुवीर ने वकालत पढ़ डाली। इसीलिए किशोर को ही तीन घंटे दोपहर के दुकान पर बैठाता हूँ। बाकी वक्त आर.के. पुरम, राजनगर और लोधी कॉलोनी में मोटर साईकिल दौड़ाते किशोर छोरियों से दोस्ती करता और निभाता रहता है।''

''पेट्रोल और लड़कियों पर होने वाले खर्च को तुम्हीं देते होंगे छिद्दमी।''

''न मैडम जी। चुपचाप गल्ले से निकाल लेता है। सोचता हूँ कि इसकी शादी कर दूँ तो सुधर जाए।''

''पहले रघुवीर की तो कर दो!''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''उसकी तो हो गई। नर्मदा नाम है बहू का। जैन परिवार से है। पहले दो-तीन साल अपने लौंडे को दादी के पास छोड़े रही। अब पाँच साल का है सूरज तो फटकने नहीं देती है। कहती है-दादी के पास रहा तो छोटों की ही बात सीखेगा। घर ये सब मेज-कुर्सी पर खाएँ। सोफे पर पसरे या डबल बैड पर। चटाई बस हमारे कमरे में ही बिछी रहे। रात को खड़ी खाटें बिछाती हैं छज्जो। आज भी छज्जो घर में ही उड़द और मूँग की बड़ियाँ, पापड़, आलू चिप्स वगैरा बनाती है। अचार भी डालती है, मगर नर्मदा, रघुवीर न खाएँ और न ही सूरज को छूने दें। हींग की बदबू आए उन्हें। पीजा और न जाने पैकिट वाले सामान मँगाकर सूरज और खुद खाते रहें।''

''बहू नौकरी करती है!''

''बहू और उसका आदमी हमारी छाती पर मूँग दलें। बारह बजे कोरट जाए रघुवीर। छै बजे लौट आए। दोनों नाश्ता कर निकल पड़े कलब-शलब। फिर दफ्तर खोल रघुवीर बैठ जाए। सवेरा होते ही मुंशी मुवक्किल आ जाएँ। जब हो तब बंगलों की औरतों को बुला खाना-पीना करती रहे नर्मदा...क्या कहें कुट्टी पार्टी! गिट-पिट बोलती रहे औरतें।''

''कुट्टीपार्टी नहीं छिद्दमी। किटी पार्टी कहते हैं उसे।''

गंभीर हो जाता है अचानक छिद्दमी- ''सिगरेट के पैकिट पे लिखा रहे कि तम्बाकू केंसर करे। फेफड़ों का चित्र भी बना रहे फिर भी बीड़ी सिगरेट पीने वाले बढ़ ही रहे हैं।''

''हाँ, छिद्दमी! मैं औरत होकर भी सिगरेट पीती हूँ। जब भी सिगरेट सुलगाती हूँ तो मर्द अजीब दृष्टि से देखने लगते हैं, मानो कि बीड़ी-सिगरेट पीना उन्हीं का अधिकार हो। उसी दृष्टि को तो मैं चुनौती देना चाहती हूं।''

''जो भी हो मैडम जी! सिगरेट-बीड़ी पीना अच्छी बात नहीं है। इससे पीने वाले को नुकसान पहुँचता है पर शराब तो पूरे घर को बर्बाद कर देती है, उस पर सरकार क्यों मेहरबान है? सुना है कई जगह शराब की फैक्ट्रियों में शराब बन सके इसके लिए किसान हूँ बाजरा या दालें उगाने की जगह अंगूर की खेती करने लगे हैं।''

''हाँ छिद्दमी। जब से बेईमानी से लोग और नेता अमीर बनने लगे हैं वे जनहित वाले काम छोड़ चुके हैं। मेरी माई की कमाई से उसका आदमी शराब पीता है और बच्चे रोटी को तरसते रहते हैं। न देकयाई तो आदमी माई को उधेड़ के रख देता है। अकसर मुझसे पैसे ले जाती है माई।''

अपने मोबाइल से छिद्दमी का फोटो खींचती मृदुला कहती है-''मैं तुम पर बड़ा आर्टिकल लिखूँगी अपने अखबार में।''

''क्या करेंगी मुझ पर कलम चलाकर। वक्त बहुत बदल गया है। किताबों से कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
शिक्षा न ले अब! हमारे बनारस के गाँव से जब कोई इलाज के लिए आ जाता है तो मदद करने की जगह सब उन पर इसे सिवाए छज्जो के जो उन्हें अस्पताल अस्पताल ले जाते हैं। जब हम यात्रा और उसके बीमार लड़के के लिए हर महीने मनीऑर्डर भेजते हैं तो रघुवीर और किशोर आँखें मटकाकर हमें फटकारते हैं...क्यों भिखारियों की मदद कर रहे हो? क्या वे हमारे काम आएँगे कभी! मैडमजी सुखी लोगों के लिए दिल पत्थर हो गए हैं आजकल। आदमी हर सुख सिर्फ अपने ही चाहता है।''

''कितना कमा लेते हो छिद्दमी।''

''लिखना नहीं मैडम पर हजार-बारह सौ तो रोज हो ही जाते हैं। कभी इस से भी ज्यादा।''

''अच्छा, पर तुम्हारे हाथ कत्थई क्यों हैं? दूसरे पान वालों के तो नहीं होते हैं।''

''वो ससुरे कैमिकल वाला कत्था लगाते हैं। हम देशी कत्था कोटा की एक खास कंपनी से मँगाते हैं। धोने पर भी हाथ साफ नहीं होते। आपने फिल्मी गाना सुना होगा...*पान खाएँ सैयाँ हमार। मलमल का कुर्ता और छींटे लाल!* हमारा कत्था भी जहाँ छू जाए दाग पक्का लग जाता है।''

मृदुला कार लेकर दिल्ली की हाट की तरफ निकल जाती है। छोटी-मोटी दस्तकारी की चीजें लेकर लौट आती है। मगर सोच हमेशा उसका पीछा करता रहता है...छिद्दमी के खानदान का ही दिल छोटा नहीं है, खुद उसकी माँ उसे लूटती रही है। हर चीज तो अच्छी लगती है भाई दर्शन के लिए बरेली उठा ले जाती है, ये कहते हुए कि तू क्या करेगी? दर्शन आज एमटैक फाइनल मे हैं। ग्यारहवीं में था कि पिता नहीं रहे। वह दिल्ली आ गई। नौकरी कर मोटी रकम भेजती आ रही है आज तक। इसी दीवाली पर आई थी माँ। दर्शन भी साथ था। दीपावली की शाम के लिए पटाखे लेने बाजार गया था। वह पूजा के वक्त पहनने के कपड़े निकाल रही थी कि सोने की वह चेन भी निकल आई जो इस वर्ष सबसे बढ़िया काम करने के लिए अखबार से मिली थी। माँ ने देखते ही उसे अपने कब्जे में कर लिया-''अच्छी है! दर्शन के विवाह में काम आयेगी!''

मृदुला महसूस करती है कि पढ़-लिखकर और दिल्ली में रहकर छिद्दमी का खानदान छोटे दिलवाला हो गया है। माँ तो बरेली जैसे छोटे शहर में रहती है फिर क्यों कर बेटे की ही फिक्र करती है? उसे फिक्र नहीं है कि इसने एक संतान को और भी जन्म दिया है। क्या वह संतान सिर्फ स्वार्थ पूर्ति के लिए बनी है?

उसे लगा कि औरत शायद और मर्द में फर्क सबसे ज्यादा करना सीख जाती है। पुरुष के मुकाबले वह कुछ ज्यादा ही परंपराओं का अनुगमन करती है। पूजा में निकाले रंगीन कपड़ों की जगह वह सादे वेश में बैठती है। दर्शन झिड़कता है बहन को-''ये क्या दीदी? तुम तो माँ से भी ज्यादा फीके कपड़े पहने हो?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माँ मुस्कुरा के कहती है-''दीदी तो तेरी जिन्दगी को रंगीन रखने के लिए ही सादा रह रही है।''

ग्यारह दिन बाद अखबार में पूरा एक पेज फोटुओं के साथ छिद्दमी पर छपा। मगर इस रात देर से पहुँची मृदुला जब वेन में छिद्दमी का सामान लद रहा था। छिद्दमी को अखबार की प्रति पकड़ाई तो हँसा वह, ''आपने तो हमें अमर कर दिया मैडम जी। पच्चीस अखबार खरीदे थे। पन्द्रह बाजार में बाँट दिए। एक-एक एक रहमत और मनोहर ले गया। पाँच बनारस के गाँव में चाचा-मामा के घरों में भेज दूँगा। घरवाली तो देखते ही पूजा में घटने दौड़ पड़ेगी।''

''घर के और लोगों को भी दिखाना। किशोर को दिखाया?''

''दिखाया था। देखकर मुस्कुराया भर।''

दो दिन बाद इतवार पड़ गया। दोपहर में पहुँच गई मृदुला। थड़े पर एक ही ग्राहक था। रहमत माल सप्लाई में गायब था। पूछा, ''दिखा बहू-बेटे को?''

''मैंने कहा था न कि घरवाली पूजा में रख लेगी। वही हुआ। कल मढ़वा भी लाई वह!''

''और बेटा-बहू?''

''बहू ने देखकर हटा दिया, शिट हिन्दी में है। क्या फायदा?''

''और रघुवीर?''

पढ़कर कहने लगा, ''अब इन्कमटैक्स वाले क्या छोड़ देंगे? परवाह न करो। सैकड़ों के इन्कमटैक्स बचाता हूँ तो क्या तुम्हारा नहीं बचाऊँगा?''

''पर मैंने तो कोठी की जगह मकान लिखा है और आमदनी का जिक्र भी नहीं किया है फिर इन्कम टैक्स का सवाल ही नहीं उठता है। तुम्हारे सम्पर्क, सादगी और कत्थे से रँगे हाथों का जिक्र है आलेख में।''

हँसा छिद्दमी-''मैंने क्या परचा बाँचा नहीं था? अरे, हिन्दी का अखबार तो रोज पढ़ता हूँ। मैडम जी जानता हूँ कि इस युग की मर्यादा झूठ पर टिकी हुई है। गाँधीजी वाली सादगी किस में है? सब झूठ ओढ़ते और बिछाते हैं। सच से बचने का पैमाना अब झूठ ही तो रह गया है। नर्मदा, रघुवीर और छोटा सूरज नाक पर हिन्दुस्तानी मक्खी नहीं बैठने देते हैं। किशोर अपने सुख में मशगूल रहता है। कमाई हमारी है और कोठी में कुत्ते-कुतियाओं की तरह हम रहते हैं।''

कुछ देर खामोश रहकर कहता है छिद्दमी-''अपने बेटे हैं इसलिए बर्दाश्त कर रहा हूँ।''

रिश्तों के मध्य उपजी जड़ताओं के बारे में सोचती हुई मृदुला मीठा पान खाकर और सिगरेट का पैकिट पकड़कर घर लौट आती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन साल बीत गए हैं। मृदुला ने अपने एक सहयोगी से विवाह कर लिया है। दर्शन ने लखनऊ में नौकरी पकड़ ली है। उसी के साथ पढ़ती थी सुषमा। एक दिन दोनों आर्य समाज मंदिर से विवाहकर लौटे तो माँ को लगा कि इसका हक छीन लिया गया है। वह तो सुंदर लड़की दान-दहेज के साथ लाती। मृदुला और दर्शन दोनों ही माँ की मदद करते रहते हैं पर दानों से रूष्ट रहती है माँ। उन्हें लगता है कि दर्शन ने सुषमा से और मृदुला ने गैर जातीय भारती से शादी कर उन्हें नीचा दिखाया है।

एक इतवार भारती और मृदुला दोनों ही पान खाने और दिल्ली हाट में खरीदारी के लिए निकल पड़े। पर ये क्या? तख्त के नीचे छिद्दमी के दोनों हाथ लटके हुए थे। वह चिरनिद्रा में सो गया था। रहमत बताता है रोते हुए-''किशोर बाबू तो मोटर साईकिल उठा चले गए। मैं जगाता रहा पर उठे नहीं।''

''घरवाले आ गए?'' भारती पूछते हैं।

रहमत बताता है-''वो बड़ा लड़का खड़ा है और वो पेड़ के नीचे चबूतरे पर उनकी बीवी रो रही है।''

मृदुला बात करती है रघुवीर से, तो कहता है-''पुलिस पहले पोस्टमार्टम करायेगी तब लाश हमें मिलेगी। घर में मरते तो इस फजीहत से बच जाते।''

छज्जो के आँसू मृदुला पोंछना चाहती है तो वह हाथ थाम के हटा देती है, मानो कह रही हो कि हँसाने वाला चला गया। अब तो जब तक साँस है रोना ही रोना है।

115-बी, पाकिट जे एण्ड के, दिलशाद गार्डन
दिल्ली-110095

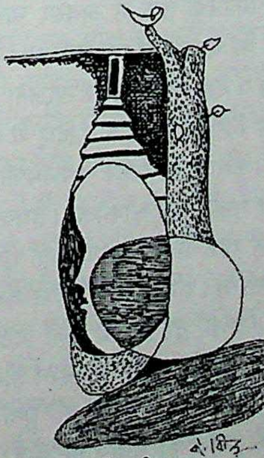

रेखांकन : के.रवीन्द्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भेड़-भेड़िए

● अरविन्द जैन

पता नहीं मुझे क्यों लगता है कि फ्रिज में रखा दूध फट गया होगा। डीप फ्रिज खोलते डर लगता है कि गले-सड़े संबंधों की लाशें बाहर निकल आएँगी। हर समय महसूस होता है कि रिश्तों की तमाम पावनता-पवित्रता संदेह के घेरे में आ खड़ी हुई हैं। बाहर ही नहीं, दोस्तों या रिश्तेदारों से भी डर लगने लगा है कि कहीं कोई साजिश तो नहीं रच रहा। बड़े भाई ने जूस का गिलास लाकर दिया तो दिमाग में संदेह के कीड़े कुलबुलाने लगे कि जरूर जहर मिला कर लाया होगा। आस्था और विश्वास काँच के टुकड़ों की तरह, दिलो-दिमाग में बिखरे पड़े हैं और रह-रह कर चुभते रहते हैं। घर से दफ्तर के बीच का रास्ता, किसी सुनसान श्मशान सा लगता है। सारी रात सपने में कभी भूखा-प्यासा और लहूलुहान, दूर तक पसरे थार, बीहड़ जंगल या दुर्गम पहाड़ियों में चीखता-चिल्लाता घूमता रहता हूँ, कभी किसी तूफानी नदी में कागज की कश्तियाँ चलाते-चलाते डूब जाता हूँ। मैं उस घटना-दुर्घटना को भूलना चाहकर भी, भूल नहीं पाता।

हमारा घर माणिक की हवेली से थोड़ी ही दूर था, सो आना-जाना ही रहता था। जन्मदिन की पार्टी से लेकर पिकनिक तक में अक्सर माणिक, हमारे साथ ही रहता। धीरे-धीरे माणिक, मधु के प्रेम के चक्कर में पड़ गया था। न जाने कब, क्यों और कैसे? संभवत मधु का सपना था, अपना एक ब्यूटी पार्लर खोलना और माणिक ने उस सपने को हकीकत में बदलने के ख्वाब दिखाने शुरू कर दिए थे। माणिक की हवेली, किसी आलीशान किले से कम न थी। हवेली के बाहर चमचमाती देशी-विदेशी महँगी गाड़ियाँ खड़ी रहती थीं और बड़ी-बड़ी मूछों वाले चौकीदार। हवेली के चारों तरफ हमेशा पेड़-पौधे और रंग-बिरंगे फूल खिले रहते थे। दो-तीन माली सुबह से शाम तक इनकी बच्चों से भी ज्यादा देखभाल जो करते थे। हर कमरे में एयर कंडीशनर और फर्श पर ईरानी कालीन। दिवाली के दिन तो हवेली, दुल्हन सी सजी दिखाई देती थी।

आये दिन हवेली में कोई न कोई पार्टी या जश्न होता और मेहमान (युवा स्त्री-पुरुष) देर रात गए तक शराब पीते, मादक संगीत की धुनों पर नाचते-गाते, खूब मौज-मस्ती करते और सुबह होने से पहले ही गायब हो जाते। हर महीने कबाड़ी आता तो अखबार, चिकने पन्नों वाली फिल्मी मैगजीन, अंग्रेजी नॉवेल और शराब की सैकड़ों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
खाली बोतलें (टीचर, जॉनी वाकर, शिवास रीगल, ब्लैक डॉग) बोरी में भरकर ले जाता। माणिक कोई बहुत बड़ा उद्योगपति या कारोबारी नहीं बल्कि प्रोपर्टी डीलर था यानी दोनों तरफ से दो प्रतिशत कमीशन पर जमीन, कोठी, बंगले, फ्लैट खरीदवाने-बिकवाने का काम करता था। दरअसल उन दिनों गली-गली में प्रोपर्टी डीलर, ब्यूटी पार्लर और एन.जी.ओ. के बोर्ड लगने शुरू हो गए थे। देखते-देखते लोगों के लिए दलाली से अच्छा और कोई काम नहीं रह गया था। दलाली चाहे जमीन जायदाद की हो या किसी भी सरकारी खरीद की। यहाँ तक कि बहुत से लोग तो कोटा, परमिट, पेट्रोल पम्प का लायसेंस, चुनावी टिकिट और हवाई जहाज से लेकर तोपों की खरीद तक की दलाली करने लग गए थे। हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखो ही चोखा। अदालतों की बाहरी दीवारों पर तो एक बड़ा सा बोर्ड टँगा रहता 'दलालों से सावधान, अपने वकील से सीधे संपर्क करें'। दिन-रात दलालों की गाड़ियाँ, लाल बत्ती वाली गाड़ियों के इलाके से लेकर एयरपोर्ट तक ही घूमती रहती थी।

दोनों के बीच चल रहे प्रेम-प्रसंगों की भनक लगी या शक होने लगा तो मैं अपना घर बेच हवेली से थोड़ी दूर जा बसा। लेकिन अक्सर मधु और माणिक गायब हो जाते और दो-तीन दिन घूम-घुमाकर वापिस आ जाते। माणिक और मधु के बीच पाँच सितारा होटलों में होने वाली रंगरेलियों के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है।

मधु और माणिक के बीच अवैध संबंधों के हिंसक और जंगली घोड़े हिनहिनाने लगे, तो दूर-दूर तक अनहोनी ने भी अपने पाँव पसारने शुरू कर दिए। प्रेम के पागलपन में आवारा और उद्दाम आकांक्षाएँ, निरंतर क्रूर और वहशी होने लगीं। ऐसे में वासना की गोद में लेटी कामनाओं ने, सच के संभावित चश्मदीद गवाहों को हमेशा के लिए चुप्प करने-कराने का षड्यंत्र रचा होगा।

उस दिन सात साल का बेटा और चार साल की बेटी ट्यूशन पढ़ने क्या गए कि फिर लौटकर ही नहीं आये। रास्ते में ही माणिक ने बच्चों को उठाया, गाड़ी में बैठाया और शहर के सुनसान पहाड़ी जंगल में ले जाकर, जिंदा जला दिया। बच्चों को बचाने की तमाम कोशिशें व्यर्थ साबित हुईं। उनके पास और भी तो विकल्प थे। बच्चों को छोड़कर, भाग जाते देश-विदेश कहीं भी। कहते तो मैं खुद ही तलाक दे देता, पर कैसे भाग जाते? अनहोनी तो सिर पर नंगी होकर नाच रही थी। मन में अक्सर यह सवाल कौंधता है कि फूल से अबोध-निर्दोष बच्चों को पेट्रोल छिड़ककर जलाते समय, क्या माणिक की आत्मा ने एक बार भी नहीं रोका-टोका होगा? ऐसे तो कोई जानवरों को भी नहीं मारता।

कुछ ही महीने बाद मधु को स्त्री होने और मुकदमें में सालों लगने की वजह से जमानत पर रिहा कर दिया गया और अन्ततः बरी भी हो गई थी। न मालूम क्यों, मधु की जमानत करवाने वाले वकील साब की कुछ ही समय बाद दिन-दिहाड़े हुई हत्या भी मुझे आश्चर्यजनक सी लगती है। बार-बार शक होता है कि कहीं इसमें मधु या माणिक या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोनों का हाथ तो नहीं। इसके बाद तो मुझे हर जगह वह ही खूनी नजर आने लगी। बस स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन से लेकर एयरपोर्ट तक। अस्पताल, बाजार, होटल, पुलिस स्टेशन और मंदिर से लेकर माल तक। मोटरसाइकिल पर पीछे बैठे दो बच्चे देखते ही सायरन सा बजता कि यह इन्हें पहाड़ी जंगल ले जाकर जिंदा जला देगा। मैं जब तक चीखता, तब तक वह बहुत दूर जा चुका होता। रेलवे स्टेशन पर, लावारिस सा बैग देखकर लगता कि इसमें दोनों बच्चों की लाश होगी। पेट्रोल पम्प पर किसी को प्लास्टिक की बोतल में पेट्रोल लेते देखता तो सोचता कि माणिक बच्चों को जलाने के लिए ले जा रहा है। सालों डाक्टरी इलाज के बाद, थोड़ा ठीक होने लगा था कि फिर से अखबार में छपी खबर 'माणिक को सजा-ए-मौत' पढ़कर सारे शरीर में संदेह की जहर बुझी सुइयाँ चुभने लगी। बच्चों की अनसुनी चीखें अब भी अदालत के उन गलियारों में सुनाई पड़ती हैं, जहाँ मुकदमें की सालों सुनवाई होती रही।

दस साल बाद अखबारों में समाचार छपा था कि तमाम गवाहों, तथ्यों-सत्यों को देखेते हुए और दोनों पक्षों के विद्वान वकीलों की बहस सुनने के बाद, सेशन जज ने माणिक को 'सजा-ए-मौत' का हुकुम दिया है, बशर्ते कि उच्च न्यायालय फैसले की पुष्टि कर दे।

'सजा-ए-मौत' तो ठीक लगी, बहुत खुश भी हुआ मगर 'बशर्ते कि उच्च न्यायालय फैसले की पुष्टि कर दे' को लेकर मन में सैंकड़ों सवाल उमड़ते-घुमड़ते रहते। उच्च न्यायालय ने पुष्टि नहीं की तो? क्या बरी कर देगी...क्या उम्र कैद में बदल देगी? माणिक बच जायेगा तो फिर से बच्चों को जलाएगा। नहीं...नहीं...नहीं...ऐसा नहीं हो सकता...अगर हुआ तो...तो...तो....मैं??? उच्च न्यायालय का फैसला आने तक मेरी हालत पहले से भी ज्यादा खराब होने लगी। कभी कहीं बम्ब विस्फोट में बच्चे मारे जाते और कभी ट्रेन में आग लगने-लगाने से। कभी स्कूल की छत गिरने से मासूम बच्चों की मौत तो कभी बस दुर्घटना से। कभी नाबालिग बच्चियों की बलात्कार के बाद, गला घोंटकर हत्या कर-करवा दी जाती तो कभी किसी गंदे नाले या नहर से किसी अनाम बच्चे या बच्ची की सड़ी-गली लाश बरामद होती।

अब तो अखबारों से बहुत पहले, टी.वी. चैनलों के कैमरा घटनास्थल पर पहुँचकर आँखों देखा हाल सुनाने लगते हैं। ऐसी खबरें पढ़ने-सुनने के बाद तो सचमुच दिमाग भन्नाने लगता है और ऐसे महसूस होता है, जैसे हर जगह शिकारी गश्त लगा रहे हैं। मैं जब तक सारे अखबार फाड़-फाड़कर कचरे का ढेर लगाता हूँ तब तक नए अखबार 'आज की ताजा खबर' के साथ दरवाजे पर घंटी बजाने लगते हैं।

टी.वी. बंद...अखबार बंद...और दिमाग बंद कर हफ्तों गुमसुम अपने कमरे में ही पड़ा-पड़ा, न जाने क्या-क्या सोचता-समझता रहता हूँ। सबने पागल कहना शुरू कर दिया है। कोई 'फिलास्फर' कहता है और कोई सिरफिरा या सनकी। ब्रेकिंग न्यूज़ यह है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation/Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि 'देश और समाज के बारे में सोचने को, दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया है' सूचना के अधिकार के तहत जो कोई भी सूचना माँगेगा, उसे गोली मार दी जाएगी।

मैं अपने आपको बहुत समझाता-बुझाता हूँ 'कल से दफ्तर जाऊँगा, मन लगाकर काम करूँगा, कुछ भी उलटा-पुलटा नहीं सोचूँगा और...और...कोई फिजूल पंगा नहीं...परंतु दोपहर होते-होते दिमाग फिर से वही गर्मी और फितूर करवटें लेने लगता है। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ...किससे कहूँ?

लगभग दो साल बाद वही हुआ, जिसकी आशंका थी। अखबारों में छोटी सी खबर थी कि उच्च न्यायालय की माननीय न्यायमूर्ति सुश्री (क्षमा करें याद नहीं आ रहा, न जाने क्या नाम था जजसाहिबा का) ने गंभीरतापूर्वक वरिष्ठ वकीलों की बहस सुनने और तमाम मुद्दों पर विचार करने के बाद, सजा फाँसी की बजाय, बीस साल की उम्र कैद में बदलते हुए कहा है कि यह 'दुर्लभतम में दुर्लभ' मामला नहीं है।

खबर बहुत ही छोटी सी छापी गई थी मगर मेरे लिए तो यह किसी भयंकर भूकंप जैसी थी, जिसमें बहुत कुछ तहस-नहस हो गया या होने वाला था। खबर पढ़ते-पढ़ते ही दिमाग सुन्न सा हो गया। चाय का कप फर्श पर गिरा और टूट गया। चश्मा उतारने लगा तो हाथ फूलदान से जा टकराया। ना चश्मा बचा और ना ही फूलदान। शाम तक शायद कुछ भी साबुत नहीं बच पाया। रही-सही आशा, उम्मीद और विश्वास को पिछले प्रांगण में दफन कर दिया। दिल, दिमाग और आत्मा किसी ऐसे गहरे अंधे कुएँ में भटक रहे हैं, जिनसे फिलहाल बाहर निकलने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा।

ऐसी मन:स्थिति में दिन, महीने, साल बीतते गए। निरंतर धर्म-ध्यान-योग-साधना और चिंतन के बावजूद ना कोई फायदा हुआ और ना होने की कोई गुंजाइश दिखती है।

सुबह घर से दफ्तर जाते समय, राजघाट से लेकर राजपथ तक ट्रैफिक जाम था। रास्ते में देखा कि न्याय के सबसे बड़े मंदिर के सामने दुनियाभर के टी.वी. चैनलों की गाड़ियाँ खड़ी हैं और रोजाना की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही भीड़ है। भीड़ में आम आदमी कम, काले-काले लम्बे चोगे वाले अधिक दिखाई दे रहे हैं। मन में यह ख्याल भी आया कि माणिक के खिलाफ दायर, सरकार की अपील पर कोई निर्णय हुआ या नहीं? मैंने हमेशा की तरह निराशावादी ढंग से अनुमान लगाया कि कुछ नहीं होगा...कुछ भी नहीं होगा...सिवा तारीख...तारीख...तारीख...।

रात को खाना खाने के बाद थोड़ी देर अमर्त्य सेन की पुस्तक 'एन आइडिया ऑफ जस्टिस' के पन्ने पलटता रहा और ना जाने कब गहरी नींद सो गया। पिछले पुस्तक मेले में खरीदी इस किताब को आज तक खोलकर भी नहीं देखा। सुबह-सवेरे आँख खुल गयी तो मन हुआ कि पहले की तरह, आज से पार्क घूमने जरूर जाया करूँगा। उस दिन वैसे भी छुट्टी थी, सो चुपचाप कपड़े और जूते पहन सैर करने निकल पड़ा।

पार्क में घंटा भर चक्कर काटने के बाद इच्छा हुई कि एक कप चाय पी जाये तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
मजा आ जायेगा। चाय का आर्डर देकर मैं पास पड़ी बेंच पर बैठ गया। सोचा जब तक चाय आती है। तब तक सामने पड़ा अखबार ही देख लेता हूँ। हाथ बढ़ा अखबार उठाया और एक के बाद एक खबर पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते अचानक कानून पन्ना सामने था। सबसे नीचे एक कालम में मुश्किल से दस लाइनों का समाचार। सुप्रीम कोर्ट द्वारा माणिक केस में दायर, राज्य सरकार की याचिका खारिज। फैसले में कहा गया है ट्रायल कोर्ट ने प्रतिवादी को फाँसी की सजा सुनाई मगर हाई कोर्ट ने इसे 20 साल कैद में बदल दिया। हाई कोर्ट के फैसले के विरुद्ध राज्य सरकार ने विशेष अनुमति याचिका दायर की, जिसे दो साल बाई सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया गया। स्वीकार करने के छह साल बाद, अब यह अपील अंतिम सुनवाई पर आई है। सभी पक्षों ने माना कि इस बीच बीस साल की सजा पूरी होने के कारण माणिक को जेल से रिहा कर दिया गया है। इस हालत में अपील मंजूर करके, सजा-ए-मौत का आदेश देना सचमुच न्याय का मजाक उड़ाने के समान होगा। हालांकि हम ट्रायल कोर्ट के फैसले को सही मानते हैं, जिसमें कहा गया है कि प्रतिवादी द्वारा किया अपराध वास्तव में बेहद बर्बर है और किसी रहम के काबिल नहीं है।

माणिक जेल से कब रिहा हुआ...मुझे पता भी नहीं चला। उफ...पता नहीं लड़का कब चाय का कप रख चला गया और चाय रखी-रखी ठंडी हो गई या खबर पढ़ते-पढ़ते कब, कैसे और क्यों मैं बेहोश हुआ और कौन मुझे उठाकर अस्पताल लाया। होश आया तो मैं किसी विशालकाय अदालत के खंडहरनुमा संग्राहलय में घुन्न या दीमक लगी मेज-कुर्सियों और किताबों के ढेर में आग लगा, जोर-जोर से बोलता जा रहा था 'आर्डर...आर्डर...जस्टिस...हाजिर हों।'

आग की रोशनी में सामने बनी मीनार के पत्थर पर बनी, सदियों पुरानी कोई कलाकृति दिखाई दी तो पास जाकर देखने लगा और देखता ही रह गया। किसी भेड़िएनुमा आदमी के एक हाथ में भारी सी तलवार थी और दूसरे में तराजू। उसके पीछे एक बड़े से पेड़ पर बैठे बंदर अजीब-अजीब सा मुंह बना रहे थे और बेहद भयभीत नजर आ रहे थे। दांई तरफ बाड़े में बंद भेड़ों के सिर पर काली पट्टी बँधी थी। उसके ठीक सामने काठ का काफी मोटा सा लट्ठा रखा था, जिस पर खून से लथपथ कटी हुई भेड़ पड़ी थी। मुझे ऐसा लगा जैसे तराजू के पलड़े में भेड़ का मांस है और दूसरे में सोने-चाँदी के सिक्के। भेड़िएनुमा आदमी के चेहरे पर रहस्यमयी सी मुस्कान और अपार संतोष नजर आ रहा था।

दोस्तो! मुझे तो आज तक उस कलाकृति का सही-सही मतलब समझ नहीं आया। आपको कुछ समझ आये तो मुझे जरूर बताना। मैं सचमुच आपका आभारी हूँगा।

5/835, वैशाली, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201010

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन कविताएँ

● शिवनारायण

जनतंत्र

कचरे में पलती
मासूम जिन्दगी
ढूँढ रही है
अपने लिए रोटी
एक अदद रोटी
कि तीन दिनों से
अपने भूखे पेट में
पैदा कर सके कुछ हलचल!

भूख के अधीन
बंधक पड़े उसके तन को
कहर ढाती
माघ-पूस की शीतलहरी
ओला-बरखा आँधी-पानी
या देह झुलसाती
जेठिया धूप से नहीं,
चौसठ पर के लोकतंत्र से
करना पड़ रहा है संघर्ष!
आखिर उसकी खैरियत
कब लेगा यह जनतंत्र

राजमार्ग से गुजरते
रंग-बिरंगे गुदगुदे कपड़ों में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सँवरते-चहकते बच्चे
अपने पॉलीबैग से
जहाँ-जहाँ करते हैं कूड़ा जाम
कथरी लिपटे ये मासूम
पलते उन्हीं में तमाम।
अब महाशक्ति बनने की होड़ में
दौड़ते-हाँफते लोकतंत्र से
कोई कैसे पूछे कि
एक ही समय में
बच्चों की ये दो नस्लें
कौन पैदा कर रहा-
करोड़ों-अरबों का 'सर्वशिक्षा अभियान'
किन दिशाओं में बह रहा!
'गन' तंत्र के हाथों जहाँ
गणतंत्र मौन है
ये सभासद सारे कौन हैं!!

चिड़िया और तिनके

वट वृक्ष की
उत्तुंग फुनगियों पर
चहकती हुई चिड़िया
गाती है गीत
मुक्ति और प्रेम के!

फुनगियों पर
शांत बैठी चिड़िया
धरती की ओर निहारती है।
सृजन की संकल्पना में
एक-एक तिनके को
धरती से बटोर लाती है।
तिनकों से बनाती है
अपने लिए वह घर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
जहाँ अपने एकान्त में
बो सके सृजन के बीज!

फुनगी-फुनगी फुदकती चिड़िया
धरती के तृण-तृण पर
रखती है नज़र
कि कोई तिनका
उससे छूट न जाए
आखिर उन्हीं तिनकों से
रचती है वह अपनी दुनिया
सुरक्षा और विश्वास की दुनिया!

वृक्षों के शिखर पर
कूदती-फाँदती चिड़िया
फेरती है चहुँदिश चौकन्नी दृष्टि
कि जहाँ कहीं भी हो
उपेक्षित, वंचित और तिरस्कृत तृण
उसे बड़े स्नेह से वह
चोंच में दबा दुलारती है

सहलाती-सँवारती है
और फिर-
एक नये संसार की रचना में
उसके अस्तित्व को
गौरवन्वित करती है।
आखिर तिनकों के
मजबूत मेल में ही
होती है बहेलियों से
चिड़िया की सुरक्षा
और मिलता है तिनके को भी
चिड़ियों के नेह में
अपने होने का सम्मान।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोनों ही देते हैं
एक दूजे को
अपने होने का अर्थ !

छोटे लोगों की दुनिया
ऐसे ही एक-दूसरे के
सहयोग पर
बनती-सँवरती है !

महानगर

कंक्रीटों के इस घने जंगल में-
नहीं पहुँचतीं जहाँ
सूरज की उत्तप्त किरणें,
नहीं झाँकता जहाँ
चाँद का चंदन-सना उजास,
नहीं सुन पड़ती जहाँ
अलस्सुबह चिड़ियों की
चह-चह की कोरस-धुन,
नहीं सरसराती जहाँ
गंध भरी पूर्वा हवाओं की मुस्कान
और-
नहीं भरती जहाँ
जीवन में किसी मौसम की गुलाबी खुनकी !

मुश्किल है करना
परतों में अलंकृत स्नेहिल चेहरों की शिनाख्त,
मुश्किल है खोजना
धुँआते रिश्तों के मलबे तले
रुहानी प्रेम का क्वाँरापन,
मुश्किल है पढ़ना
बहना की शून्य-टेरती पलकों में
एक कोई संतृप्त छवि की चाह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
और-
मुश्किल है रच लें एक नया
शामों की खुशबू में
सरसों का गीत!

भोर के सपनों पर
है सख्त यहाँ पहरा
फूलों पर है काँटों का घेरा।
चलो-
चलें दूर कहीं
कंक्रीटों के इस घने जंगल से,
जहाँ अपने ही काम आए
पड़ोसियों के दंगल से!

305, अमन अपार्टमेंट, शांति निकेतन कॉलोनी
भूतनाथ रोड, पटना-800026

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सात कविताएँ

● महेशचन्द्र पुनेठा

किताबों के बीच पड़ा फूल

सूख चुकी हो भले
इसके भीतर की नमी
कड़कड़ी हो चुकी हों
इसकी पत्तियाँ
उड़ चुकी हो भले
इसमें बसी खुशबू
फीका पड़ चुका हो भले
इसका रंग
पर इतने वर्षों बाद अभी भी
बचा हुआ है इसमें
बहुत कुछ
बहुत कुछ
बहुत कुछ ऐसा
खोना नहीं चाहते हम
जिसे कभी।

उजास पैदा करता एक दृश्य

आज कहाँ रह गए हैं भले मानुष
जब सुनता हूँ मैं इन उदास स्वरों को
मुझे याद हो आती है घसियारिनें
एक ऐसे मौसम में
जब दूर-दूर तक भी
दिखाई न देता हो तिनका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरी घास का
जब थामते हुए हाथ में आँसी
लगाते हुए पीठ पर डोका
कुलबुलाती हों घसियारिनें भी-
'बारिश की एक बूँद
टपकी नहीं अभी तक
खाली डोका
घुमाना होता बज्यूँण।'
बावजूद इसके
इधर-उधर भटकती
झाड़ी-झाड़ी
खेत और बाड़ी-बाड़ी
ढूँढ ही लाती हैं वे हरी घास
लौटती हैं
हरियाली से भरा डोका लिये
जैसे लादी हो पीठ पर
हरे-पीले फूलों का गुलदस्ता

नया उजास पैदा कर देता है/यह दृश्य
निराश दिल में।

क्या हुआ तुम्हें

तुम तो नहीं थे ऐसे नत्थू
क्या हुआ तुम्हें
बाजार का गणित तो
जानते ही नहीं थे तुम

चालाकी क्या होती है तुम्हें पता ही नहीं था
जो कहते थे सीधे-सपाट
मुँह के सामने कहते थे
पीठ पीछे बात करना तो तुम्हें कभी आया ही नहीं
किसी के घर पर आने पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कितने खुश हो उठते थे तुम
जो भी होता था भीतर कुछ खास
निकाल लाते थे अतिथि सत्कार में
अपना धर्म समझते थे इसे
तुम तो केवल देना जानते थे
नहीं देखा तुम्हें कभी
इस तरह मोल-तोल करते हुए

न किसी की जेब में हाथ डालते हुए
न गरदन दबोचते

एक आवाज में दौड़ पड़ते थे तुम तो
अब तुम्हें आवाज सुनाई भी नहीं देती

कहाँ से सीख लिया यह सब तुमने
तुम तो नहीं थे ऐसे नत्थू
क्या हुआ तुम्हें?

बाजार-समय

बहुत सारी हैं चमकीली चीजें
इस बाजार-समय में
खींचती हैं जो अपनी ओर
पूरी ताकत से/मगर
कितनी हैं
जो बाँधती हों कुछ देर भी।

पार्क

बच्चे निकल आए हैं
घरों से उछलते-कूदते
चीखते-चिल्लाते
तरह-तरह की आवाजें निकालते
शुरू हो गए हैं खेल उनके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देखते-देखते
पार्क बदल-सा गया
मेरे गाँव के विशाल टुनी के पेड़ में
हर शाम भर जाता है जो
पक्षियों की चीं-चीं...चूँ-चूँ से
बोलने लगता है अलग-अलग स्वरों में

मुझे याद आने लगा
टुनी का झूमना-मचलना-खिलखिलाना/गाना-नाचना

पर क्या हो गया यह
देखते...देखते
कहाँ उड़ गए सारे बच्चे
बिजली आ गई...ई...के एक सामूहिक स्वर के साथ

बहुत देर तक/गूँजती रहे ये स्वर
उड़ते पदचापों के स्वर के साथ

पार्क उदास आँखों से
टुकुर-टुकुर
देखता रह गया
वहाँ बैठे वृद्ध युगलों को
जाड़ों के नासपाती के पेड़-सा।

दिल्ली का राज

पहले-पहल दिल्ली गया जब
पिता जी के साथ
बस अपने गाँव के अंदाज में बोलता था
ऊँची आवाज में
टोक दिया मेरे हमउम्र विक्की ने
यह दिल्ली है दिल्ली
मजाक करेंगे यहाँ
थोड़े धीरे-धीरे बोल यार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तब मैं बच्चा था मान ली चुपचाप बिचकने की बात
पर सोचता रहा बहुत दिनों तक

आज समझ आता है मुझे
ऊँची आवाज की
दिल्ली क्यों बनाती है मजाक
और दिल्ली में
धीमे-धीमे बोलने का क्या है राज।

तसल्ली

तसल्ली होती है कुछ
देखता हूँ जब
बस्ते
और माता-पिता की
लैण्टानाई महत्वाकांक्षाओं के
बोझ से दबे बच्चे
निकाल ही लेते हैं खेलने का समय
ढूँढ लेते हैं एक नया खेल
समय और परिस्थिति के अनुकूल

पतली गली में हो
या छोटे से कमरे के भीतर
या फिर कुर्सियों के बीच
मेज के नीचे
चाहे स्थान हो कितना भी कम
बना ही लेते हैं वे
अपने लिए खेलने की जगह/जैसे अबाबील
ढूँढ ही लेती है घर का कोई कोना
अपना घौंसला बनाने को
तमाम चिकनाई के बावजूद।

जोशी भवन, निकट बैंक
पिथौरागढ़ (उत्तराखंड) 262501

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन कविताएँ

● शशिभूषण बड़ोनी

सबसे बड़ी व बुरी खबर

रोज खोलते ही
अखबार
खबरें भरी होती हैं
चोरी, हत्या, बलात्कार, भ्रष्टाचार की
भयावह व बेहद

ऐसा नहीं है कि
नहीं होती थी खबरें पहले एसी
अखबारों में

होती थी...
लेकिन अफसोस व अजरज जो
आजकल होता है अधिक
वह इसलिए कि
पहले लोग पढ़कर सुनकर ऐसी खबरें
चौंक-चौंक पड़ते थे
चिन्ता व अफसोस प्रकट करते थे
और चर्चा करते थे...। तथा
निवारण का हल खोजने को
राय मशविरा भी प्रकट करते थे।

लेकिन अब सबसे बड़ी व बुरी खबर
जो है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वह चिन्ता व अफसोस की बात है
वह यह है कि
अब बड़ी से बड़ी दुर्घटनाओं
भ्रष्टाचार आदि की खबरों पर भी
नहीं होती कोई प्रतिक्रिया
चुपचाप रहते हैं लोग!

व्यवहार

महात्मा गाँधी के
सादगी के सिद्धान्त प्रभावित करते हैं सबको
मुझे भी
लेकिन उन सिद्धान्तों पर चल पाना
है वाकई मुश्किल!
यह जाना मैंने तब
जब किया प्रयास एक दिन
अपने मोहल्ले के शौचालय
को स्वयं एक दिन सफाई करने की
ठानने पर!

महान कवि निराला की
साहित्य साधना से कौन साहित्य प्रेमी
प्रभावित न होगा
अनुयायी मैं भी होना चाहता हूँ
लेकिन लिखना एक भी शब्द लगा मुझे
असंभव उनकी तरह
और उससे भी मुशिकल
ठंड मे ठिठुरते किसी आदमी को
चुपचाप कम्बल ओढ़ना।

महान चित्रकार एम एफ हुसैन
के चित्र किसे प्रभावित न करते
होंगे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनके एक व्यक्तिगत गुण
नंगे पैर चलने को अपनाना चाहा
मैने भी एक दिन
और तब पता लगा
एक महान कलाकार की
स्वयं से शुरु कर कष्ट सहने की
क्षमता पैदा कर
सृजन को सार्थक करना
है बहुत मुश्किल!

जयपुरी पाँव

जयपुरी पाँव
जिनको पैर खोने वाले
चलने से लाचार
अच्छी तरह जानते पहचानते हैं
आखिर कैसे मिली इन कृत्रिम पैरों को
पूरी दुनिया में पहचान?
दरअसल इन कृत्रिम पैरों के पीछे है
एक दरियादिल
सेठी साहब की आत्मीय लगन

आगे बढाया जिसे
भुक्त भोगी मेहता जी ने
बचा लिया था जिन्होने
अपना पैर कटने से ...
अपनी आत्मा से शायद
उनका हुआ होगा साक्षात्कार...?

कितना-कितना दुख होता होगा
चलने से मजबूर हो जाना...
और बस यहीं मिली
उन्हें जीवन दृष्टि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
इस पाँव को
जरूरतमंदों तक पहुँचने की।

अब सेवा मुक्ति के बाद
उन्होने बना लिया है/अपना एक लक्ष्य
चलने के सुख को समर्पित कर
अपना तन-मन-धन/क्योंकि चलने के सुख को
पहचाना है उन्होंने।

आदर्श विहार, ग्रा. पो.-शमशेरगढ़
देहरादून (उत्तराखण्ड)

पाँच कविताएँ

● नंदकिशोर

सफेद झंडा

असल युद्ध तो शुरू होता है
तोपों के ठंडाने के बाद

युद्ध लड़ती है मामूली जनता
जले घर, बर्बाद फसल
मरे लोगों के
अनाथ, एकाकी हुए रिश्तेदार

युद्ध लंबा, दरअसल
बहुत लंबा यही चलता है
कई-कई के लिए तो
उम्र के भी पार
चाहे गोले/इधर गिरें या उधर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चंद रोज का युद्ध तो
खबरों के लिए होता है
जैसे शुरू होता है
वैसे ही खत्म होता है
भर नहीं पाते हैं तो सिर्फ
कई-कई घाव
जिनका जिक्र किताब के
किसी पृष्ठ पर
न ही इधर होता है न ही उधर
मिल ही जाते हैं
सेनापति से सेनापति
वजीरे आजम से प्रधानमंत्री
बमवर्षक विमानों
मिसाइलों के उपरांत
कागज-कलम पर उतर ही आते हैं
ताकतवर से ताकतवर
सियासतदाँ आखिरकार।

सफरनामा

पाँच वर्ष चंबल में था
फिर आया संसद में
इस तरह स्कूल से
पहुँचा वह भी कॉलेज में।

जंगल

जंगल न खत्म-सा कोई बीज है
काटो
तब भी फैसला चला जाएगा
पनपेगा वह हरा संसार होकर
लयबद्ध, हरा सुर-सा
मन-प्राण हरा कर जाएगा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फटकारो
सर झुका लेगा
थप्पड़ मारो
फफककर रो देगा
पर हर हाल में
वह भागते महानगर की रफ्तार में
रहेगा वो तेरे साथ
तेरी धड़कनों में मौजूद
रचेगा झुरमुटों में छिपे
किसी एकांत पहाड़ी गाँव का
कोई नीरव काठ का संगीत

हाँका-सा पड़ेगा
बीच महानगर में अदृश्य
व घरों को वो क्रमशः
छोटा और छोटा करता चला जाएगा
तुम्हें लपेटता
अदृश्य लताओं की
असंख्य भुजाओं में

एक आदिम नृत्य होकर।

खत

जबकि सभी चाहते हैं
अपनी आवाज में
दबा देना औरों की आवाज

खुद तो चाहते हैं कि
निकल जाएँ भीड़ में से
और लगे भी न एक भी
खरोंच
(चाहे उनके स्वार्थी प्रयासों में
दस-बीस पिस ही जाएँ!)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सभी बंद बॉगी की सुखद गर्मी में
इत्मीनान की यात्रा चाहते हैं
क्यों न सर्द दरवाजे से चिपटा
कोई गरीब मुसाफिर
दरवाजे खोलने को घिघियाता
मर ही जाए

ऐसे समय में
तुमने लिखा है खत
और खत में लिखा हुआ है
कि तुम्हें मुझसे प्यार है।

युद्ध

युद्ध समाधान नहीं होता
कोई भी युद्ध अंतिम नहीं होता
युद्ध हरेक बार खत्म होकर भी
छोड़ देता है
वे ढेर सारे कारण
जिन पर
एक नया युद्ध हो।

14/1, ईस्टमाल रोड
कोलकाता-80

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन कविताएँ

● श्रीरंग

नई वर्ण-व्यवस्था

कोठियों, हवेलियों, बंगलों की चौहद्दी में रहे तो
रहे सागर-सागर पेशा क्वार्टरों में
नवनिर्मित सरकारी कॉलोनियों में रहे तो
एच.आई.जी., एम.आई.जी., एल.आई.जी. से दूर
अंतिम सिरे की इ.डब्लू.एस. में
स्वअर्जित भूखण्ड पर यदि
घर बनाना चाहे भी तो
मिले औकात की जमीन
शहर के छोर पर कछार में डुबाऊ
या फिर खरीदें गड्ढा, तालाब, नाला
और जिन्दगी भर पाटते रहे ऊँच-नीच
उलीचते रहे बरसाती पानी...

ट्रेन में सफर करें तो भी
अनारक्षित सामान्य बोगियों में
एक पर लदे-फदे, उठे बैठे
दुर्घटना में मरे भी तो
फेंक दिए जाये अनचीन्हे मुआवजे की क्या...

लिखे पढ़े छपे भी तो
रहे अचर्चित अप्रसारित
मिले पुरस्कार भी तो मुहँ जियाऊ गैर अकादमिक
हार, फूल, नारियल, शाल बस...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
नव समाज की
नव निर्मित
वर्ण व्यवस्था में
नये दलित
नये अछूत
अर्थनीति के मान भंग से
नया हमारा चौथा वर्ण...।

लोकतंत्र बूझ-अबूझ

सर्व सम्मति से
कुछ भी नहीं होता लोकतंत्र में
अलग-अलग प्रत्याशियों के पक्ष में
अलग-अलग होता है मतदान
हर प्रत्याशी का अलग होता है
मतदाता समूह
जिसके पक्ष का मतदाता समूह
सबसे बड़ा हो जाता है
वही जीत जाता है चुनाव
जीतने वाले से
न जीतने वालों का एकत्र समूह बहुत बड़ा होता है
विपक्षियों का समूह हमेशा बड़ा होता है
जीतने वाले के समूह से
लोकतंत्र में बहुमत द्वारा नहीं चुना गया आदमी
बहुमत का नेता होता है

जनता
हमेशा जनता ही रह जाती है लोकतंत्र में
भले ही जनता के बीच का आदमी
चुन लिया जाये जनता का प्रतिनिधि
मंत्री
मंत्री की जनता होती है
जनता का मंत्री नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जनता से ऊपर उठा आदमी
जनता नहीं रह जाता...।

लोकतंत्र में
जनता का प्रतिनिधि
जनता की ओर से जनता का राज करता है

लोकतंत्र में
ज्यादा मतदाता के प्रतिनिधि हारते हैं
ज्यादा जनता हारती है...

लोकतंत्र में
बहुमत के पक्ष में कुछ नहीं होता
लोकतंत्र में बहुमत विपक्ष में बैठता है
इस तरह...।

शोकगीत

ये कोई
नदी नहीं, खारी
पसीने की धारा है
धरती के माथे से बहती
बुखार से तपती धरती...

ये कोई
लावा नहीं, ज्वालामुखी का
खूनी कतरों की कै है ये
थूक रही है धरती जो
शैय्या पर मृत्यु की पड़ी...

ये कोई
पहाड़ नहीं
धरती का धैर्य है
जो टूट रहा है...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
ये कोई
रेगिस्तान नहीं
रोग ग्रस्त धरती की छाती है दरकी
सूखी जो लम्बी बीमारी से तपकर...

ये कोई आदमी नहीं
अपने ही काल हैं
जो चीर रहे धरती की छाती को...

ये कोई
कविता नहीं, जो लिख रहा हूँ मैं
न सही
आदमी का शोकगीत है अंतिम
शोकगीत नहीं तो सही
सच तो है
सच भी नहीं हो, तो भी
मेरे लिए है, सच जैसा ही...।

128 एम.आर., कुशवाहा मार्केट
भोला का पूरा, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-2

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाँच कविताएँ

● अजय अनुरागी

पेड़ : एक

इसलिए पेड़ है
कि टूटने के बाद भी
कहलाता है पेड़।
पेड़/इसलिए पेड़ है
कि ठूँठ होने के बाद भी
कहलाता है पेड़।
पेड़ इसलिए पेड़ है
कि कटने के बाद भी
कहलाता है पेड़।
पेड़ इसलिए पेड़ है
कि टूटकर भी टूटता नहीं
कटकर भी कटता नहीं
और ठूँठ होकर भी नहीं खोता
अपनी पहचान
पेड़ इसलिए पेड़ है
कि वह हमेशा रहता है पेड़।

पेड़ : दो

तूफान के आने से भी
उतना ही लचकता है पेड़
जितना तितली के
उड़ जाने से।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनिवार्य शिक्षा कानून-शिक्षण का माध्यम

● अरुण सेदवाल

देश की आजादी के 62 वर्षों के बाद, अनिवार्य शिक्षा कानून (बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून, 2009) बनाया जाना एक बड़ी ऐतिहासिक भूल को सुधारने की ओर एक कदम लगता है। यह अच्छा कदम है, यह तो मानना होगा। परन्तु इसके पूरी तरह से लागू हो सकने के पूर्व ही अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो गई हैं। निजी स्कूलों ने तो इसे उनकी निजता के अधिकार का हनन मानते हुए सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा तक खटखटा दिया है। आशा करनी चाहिए कि इस मामले पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय बच्चों, विशेषत: गरीब परिवारों के बच्चों, के हित में होगा और पड़ोस के स्कूल में प्रवेश मिल सकने की राह आसान होगी, चाहे वह सरकारी हो या निजी क्षेत्र में।

अनिवार्य शिक्षा कानून के संदर्भ में एक और विषय पर गंभीर विचार करने की आवश्यकता है। वह है शिक्षण के माध्यम की भाषा। इस कानून की धारा 29 (2) (एफ) के अनुसार, ऐसा प्रावधान है कि शिक्षण का माध्यम, जहाँ तक व्यावहारिक (प्रेक्टिकल)हो, बच्चे की मातृभाषा होगी। 'मातृभाषा' को इस कानून में परिभाषित नहीं किया गया है। अत: राजस्थान तथा उन राज्यों, जहाँ शिक्षा का माध्यम देश के स्वतंत्र होने के समय से हिंदी है, के बारे में निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है-

1. उदाहरण के लिए, राजस्थान में 'राजस्थानी' कोई एक भाषा नहीं है। इस प्रदेश में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं। लगभग सौ साल पहले भारत में प्रथम भाषा सर्वे करने वाले जी.ए.ग्रियर्सन के अनुसार अकेले जयपुर राज्य में ही बीस बोलियाँ पाई गई थी। परंतु स्थानीय भिन्नताओं को दरकिनार करते हुए भी पूरे राजस्थान में कोई 20 वास्ताविक भाषाओं का अस्तित्व स्वीकार किया गया था। वर्तमान में भी लगभग यही स्थिति मानी जा सकती है सिवाय इसके कि स्वतंत्रता पूर्व से ही प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम हिंदी होने के कारण, हिंदी पूरे प्रदेश में लगभग सभी की अपनी भाषा बन गई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

2. सन् 2001 की जनगणना के अनुसार हिंदीभाषी राज्यों में 50 मातृभाषाओं को हिंदी भाषा के अंतर्गत माना गया था। इनमें कई भाषाएँ राजस्थान की हैं, जैसे बागड़ी, बंजारी, ढूँढाड़ी, हाड़ोती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मेवाती आदि। इनके अतिरिक्त राजस्थान में मालवी, सोंधवाड़ी, भीली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, गुजराती आदि भी प्रचलित हैं। राजस्थान में अन्य प्रदेशों से आकर कार्यरत परिवारों के बच्चों की मातृभाषाओं को भी जोड़ा जाए तो संख्या बहुत बड़ी हो जाएगी।

3. सन् 2001 की जनगणना के अनुसार ही संविधान की आठवीं सूची में शामिल 22 भाषाओं के अलावा गैर-सूचीबद्ध 100 भाषाओं और उनकी अनेक उप-भाषाओं का उल्लेख है। इसके अलावा ऐसी भी अनेक भाषाएँ और बोलियाँ हैं जिनका उल्लेख जनगणना की तालिकाओं में नहीं है परंतु वे सब भी मातृभाषाएँ ही हैं।

4. प्रख्यात भाषाशास्त्री डॉ. कन्हैया लाल शर्मा ने अपने यू.जी.सी. फेलैशिप अध्ययन में स्पष्ट किया था कि पश्चिमी राजस्थानी और पूर्वी राजस्थानी भाषाओं में 34 प्रकार के ध्वनिगत और रूपगत अंतर हैं (देखिए उनकी शोध पुस्तक ''पूर्वी राजस्थानी:उद्भव और विकास,'')। 1961 की जनगणना में राजस्थान में 73 बोलियाँ पाई गई थी। उनमें से 36 बोलियाँ राजस्थान में प्रचलन में हैं। इसी प्रकार के अंतर अन्य राज्यों की विशिष्ट बोलियों और भाषाओं में भी पाए जाते हैं।

5. वास्तविक स्थिति को देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान में राजस्थानी नाम की किसी भी एक भाषा, अथवा प्रदेश की बीस से अधिक सभी मातृभाषाओं को, शिक्षा का माध्यम बनाया जाना व्यावहारिक नहीं होगा। उदाहरण के लिए, राजस्थान के भरतपुर जिले में ब्रजभाषा मातृभाषा के रूप में प्रचलित है, यदि वहाँ प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम ब्रजभाषा के स्थान पर ''राजस्थानी'' नाम से किसी भाषा को बनाया जाए, तथा उसके साथ ही हिंदी और अंग्रेजी भी सिखाई जाए तो उस पर क्या बीतेगी? और अध्यापक की मातृभाषा यदि वागड़ी हुई, तो फिर क्या होगा? फिर ऐसे बच्चों को अन्य मातृभाषा वाले क्षेत्र के स्कूल में प्रवेश लेना पड़ जाए तो उसके लिए तो शिक्षा ग्रहण करना ही एक विकट कार्य बन जाएगा। उसका भविष्य कैसा होगा?

6. देश की स्वतंत्रता के समय से ही, व्यावहारिकता को ध्यान में रखते हुए, राजस्थान सहित, हिंदी भाषी राज्यों में हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम अपनाया गया था। यह बात अब भी उतनी ही सच है जितनी 62 वर्ष पहले थी। इन राज्यों में 50 या और भी अधिक भाषाओं को अलग-अलग मातृभाषा मान कर शिक्षा का माध्यम बनाना न तो व्यावहारिक है और न ही उचित। यदि ऐसा किया गया तो देश का पूरा हिंदीभाषा क्षेत्र दर्जनों भाषायी इलाकों में बँट जाएगा जो देश की एकता के हित में नहीं होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

7. शिक्षा के माध्यम से खिलवाड़ किए जाने का एक दुष्परिणाम यह भी होगा कि अनेक मातृभाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त बच्चों के बीच असमानता की स्थिति बन सकती है। ऐसे बच्चे हिंदी तथा अंग्रेजी में शिक्षा में प्राप्त बच्चों की तुलना में और पिछड़े जाएँगे तथा उनके लिए तरक्की के रास्ते कठिन हो जाएँगे। इसका दुष्परिणाम सबसे अधिक गरीब परिवारों के बच्चों को भुगतना पड़ सकते हैं।

8. पूरे राजस्थान प्रदेश में किसी भी एक मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना प्रदेश में बोली जाने वाली अन्य सभी मातृभाषाओं के साथ न केवल अन्याय होगा बल्कि उनके धीरे-धीरे विलुप्त हो जाने का एक प्रमख कारण बनेगा। ऐसा किया जाना अन्य भाषा-भाषी बच्चों में मनोवैज्ञानिक बोझ, भय और चिंता के भाव पैदा करेगा जो अनिवार्य शिक्षा कानून की धारा 29 (2)(जी) के विरुद्ध भी होगा।

9. ऐसी ही स्थिति कमोबेश अन्य हिंदीभाषी प्रदेशों में भी पैदा होगी।

10. सभी मातृभाषाएँ, चाहे कितने ही कम लोगों द्वारा बोली जाएँ, देश की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर हैं और उनके संरक्षण तथा विकास के लिए अलग से नीतिगत प्रयास किए जाने चाहिए। अन्य उपायों के अलावा, ऐसी कई भाषाओं को ऐच्छिक विषय के रूप में, उच्च स्तर पर, अध्ययन में शामिल किया जा सकता है और किया जाना चाहिए।

सब पहलुओं पर गौर करने के बाद यही लगता है कि, देश और बच्चों का हित इसी में होगा कि अनिवार्य शिक्षा कानून के अंतर्गत और वर्तमान त्रिभाषा नीति के परिप्रेक्ष्य में, राजस्थान सहित सभी हिंदीभाषी राज्यों में हिंदी को ही प्रारंभिक शिक्षण का माध्यम रहने दिया जाए। शिक्षा का माध्यम बदलने से कहीं अधिक अच्छा होगा यदि सरकारी स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता पर अधिक ध्यान दिया जाए ताकि बच्चों को बेहतर विकास के मार्ग मिल सके।

11, शॉपिंग कॉम्पलेक्स फ्लेट्स

वल्लभ बाड़ी, कोटा-324007 (राज.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचना की आलोचनात्मक अर्थवत्ता

● विवेक कुमार मिश्र

रचना की अर्थवत्ता सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अर्थ संदर्भों से जुड़ने में फलित होती है। किसी भी रचना में शब्द की सत्ता केवल शब्द के भीतर-बाहर छिपे अर्थों से ही नहीं जन्मती इससे आगे बढ़कर रचनात्मक शब्द अपने लिए एक झरोखा, एक गलियारा निर्मित कर लेता है, जिससे होकर रचनाकार और उसके रचनात्मक शब्द सामाजिक व आर्थिक जगत में प्रवेश करते हुए संसार की जटिलताओं और सच्चाईयों से परिचित होते हैं। इसी बिन्दु पर किसी भी रचना में आये हुए शब्द अपने सामाजिक अभिप्राय: को राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ते हुए समय का एक नया पाठ करते हैं। यहाँ रचना एक नये अर्थ को ग्रहण करते हुए रचनात्मक सत्ता के साथ अपनी आलोचनात्मक सत्ता को प्रतिपादित करती है। इसी मोड़ पर रचना का आलोचना से और आलोचना का रचना से परस्पर संवाद होता है और इस पूरी प्रक्रिया में एक रचनात्मक गणतंत्र जन्म लेता है। गणतंत्र के निर्माण में केवल रचनात्मक निष्पतियाँ ही सहायक नहीं होती बल्कि आत्मालोचन से बिंधी आलोचना गणतंत्र और रचनातंत्र को अर्थवान बनाती है। यह अकारण नहीं है कि हिन्दी के पहले बड़े और व्यवस्थित आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल लगातार साहित्य से कलावाद, रीतिवाद और रहस्यवाद का विरोध करते हुए शब्द के सामाजिक सरोकार और रचना के स्वायत्त लोकतंत्र को स्थापित करने में अपनी पूरी ऊर्जा लगा देते हैं। उनके पूरे चिंतन में कलावाद रचना के लिए एक साधन भर है। रचना अपना अर्थ कला की प्रकृति से दूर सामाजिक सच्चाईयों और जनता की मन:स्थितियों से अर्थग्रहण करती है। इसीलिए साहित्य के इतिहास की समझ बनाते हुए वे लिखते हैं-

"साहित्य का इतिहास जनता की संचित चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब होता है।" और यह प्रतिबिम्ब वास्तविक जीवन-जगत की दशाओं से जन्म लेता है, इसीलिए रचना का अर्थ उस रचना में अंतर्निहित समाज से अपना पूरा आकार ग्रहण करता है और इस समूचे अर्थ-संदर्भ को जिससे रचना भी आलोकित हो और समाज भी पूरा साफ-साफ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
दिख सके। समाज को उसके समग्र संघर्षों एवं अन्तर्विरोधों के साथ पहचाना जा सके यह दायित्व आलोचना और आलोचक का है।

किसी भी कालखण्ड में यदि रचना सामाजिक आलोचना से दूर होती है तो साफ जाहिर है कि इस दौर में रचना ही केवल समाज से नहीं कटी है बल्कि इस दौर की प्रखर चेतना का पर्याय आलोचक और आलोचना ने अपना दायित्व ठीक से नहीं निभाया है। आलोचना केवल अपनी रस-ग्राह्यता या रचनाओं के गुण-दोष का विवेचन करने मात्र से अर्थवान नहीं होती और न ही समय को बनाती है। यह आलोचना का सबसे आरंभिक और गौण पक्ष है। आलोचना अर्थवान तभी होती है जब वह रचना को सही पहचान करे, उसके अर्थ संदर्भों को सामाजिक और आर्थिक जगत से जोड़ते हुए रचना और मनुष्य के सांस्कृतिक विकास को उद्घाटित कर सके। इस रूप में आलोचना एक साथ रचनात्मक समय और आलोचनात्मक समाज को जन्म देते हुए सच्चे अर्थों में स्वतंत्र मानवीय अस्तित्व को संभव बनाती है। आलोचना का युद्ध हर समय में कलावाद, रीतिवाद और यथा स्थितिवाद को कायम रखने वाली वर्चस्ववादी शक्तियों से होता रहता है। यह जरूरी नहीं है कि आलोचनात्मक समाज के निर्माण में आलोचना कोई अपना स्वतंत्र और अलग अस्तित्व लेकर ही आये बल्कि ऐसा भी हो सकता है कि रचना में ही आलोचना और आलोचक के सूत्र अंतर्निहित हों और रचना ही आलोचना और आलोचनात्मक समाज का निर्माण कर रही हो, जैसा कि बाबा कबीर का पूरा रचना-तंत्र आलोचना और आलोचनात्मक समाज के अंत:सूत्र से परिचालित था। कोई भी आलोचक यदि कबीर का पाठ नहीं करता तो भी कबीर के रचनात्मक सूत्र सामाजिक आलोचना के पर्याय बनकर समाज को एक नई दिशा की ओर ले जाने का कार्य कर रहे थे। कबीर की प्रखर आलोचना ही अपने समय में उन्हें मनुष्य के विरुद्ध खड़ी तमाम शक्तियों का कठमुल्लावाद, पुरोहितवाद का और हर तरह के भाई-भतीजावाद का विरोध करते हुए मनुष्य के पक्ष में खड़ा होने की शक्ति प्रदान करती है। कबीर की रचना अपने समय की सबसे बड़ी आलोचना है।

रचना के हर कोण से जब समय को देखने की प्रक्रिया शुरू होती है तो रचना अपने भीतरी और बाहरी यथार्थ के साथ अपने समय की एक आलोचना भी बन जाती है। यह अलग बात है कि हर समय में रचना का अपने समय और तंत्र से सिर्फ आलोचनात्मक व्यवहार ही नहीं होता, ऐसा भी हो सकता है कि रचना अपने रचनात्मक विधान से ही अपने समय का जाँच रही हो और इसकी खबर किसी को भी न हो। इसी बिंदु पर रचना के साथ रचना के अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया में आलोचक और आलोचना का दायित्व शुरू हो जाता है। आलोचना न केवल अपने समय के रचनात्मक तंत्र को देखती है, बल्कि एक रचना में आये हुए समय को और उसके समाज को पूरी ऐतिहासिक प्रक्रिया में देखते हुए रचनात्मक विधान और उन मूल्यों को परिभाषित करती है, जिससे केवल समकालीन समय और समाज का ही केवल अर्थ नहीं संरक्षित होता बल्कि पूरा समय अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐतिहासिक और सामाजिक आर्थिक जरूरतों के हिसाब से [illegible] होता है। रचना में किसी भी समय को बड़ा बनाने में मनुष्यता के पक्ष में खड़ा होने के और मनुष्य के उन समस्त नैतिक अंतर्द्वंद्वों को देखने के संकेत-सूत्र छिपे होते हैं और यह संकेत सूत्र ही किसी समय और रचनात्मक समाज को बड़ा बनाती हैं। इसी मोड़ पर रचनाओं के आस्वाद को आमजन में एक विमर्श के रूप में ले जाने का कार्य अपने समय की आलोचनात्मक सत्ताएँ करती हैं। आलोचनात्मक सत्ता ही किसी भी समाज की विकास प्रक्रिया को उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संबंधों के साथ-साथ सांस्कृतिक संदर्भों के बीच परिभाषित करने का कार्य करती हैं, वहीं उस समाज को अपने समकालीन समय और संदर्भों के साथ-साथ पूरे ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया को समझते हुए मनुष्य के लिए एक नैतिक मूल्य की व्यवस्था बनाने का कार्य भी करती हैं। आलोचना अर्थवान ही तभी होती है जब वह रचना के भीतर छिपे सत्यों को पूरे युग संदर्भों में देखते हुए अपने समकालीन समय और समाज की सामाजिक एवं आर्थिक जरूरतों को पूरा करते हुए मनुष्य के नैतिक अर्थसूत्रों को समझाते हुए अपने समय में एक विकल्प प्रदान करती हैं।

जिस किसी कालखण्ड में रचना अपने समय और समाज से जूझते हुए एक प्रति संसार, एक विकल्प की दुनिया बनाती है वही रचना और कालखण्ड मनुष्यता के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। अपने विकल्प के संसार से ही वास्तव में रचनाएँ अपना वजूद और अपनी सामाजिक भूमिका को निभाती हैं। यह विकल्प केवल आध्यात्मिक नहीं होता इसकी अपनी सामाजिक जरूरत है। यह बिन्दु इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है कि भक्तिकाल में मनुष्य के द्वारा खोजे गए समस्त रचनात्मक विकल्प अपने तमाम आध्यात्मिक संकेतों के बावजूद अपने समय और समाज की तात्कालिक जरूरत और मनुष्यता के संदर्भों में शाश्वत जरूरतों को पूरा करते हैं। कबीर का ब्रह्म-देश, सूर का बैकुंठधाम, जायसी का सिंहलद्वीप, मीरा का अविनाशी पुरुष और तुलसी का राम-राज्य अपने समय और समाज का केवल विकल्प मात्र नहीं है बल्कि इस विकल्प में अपने समय और सत्ता संघर्ष की पूरी आलोचना छिपी है।

रचनात्मक विकल्प मनुष्य के द्वारा ही खोजा जाता है। दी हुई व्यवस्था में जब मनुष्य अपनी भौतिक एवं अन्य सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जरूरतों को एवं अपनी आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पाता तब उस व्यवस्था के प्रति विद्रोह करते हुए एक नई व्यवस्था और एक नया विकल्प होता है। रचनात्मक विकल्प किसी भी रचनाकार के नैतिक साहस और ईमानदार संवेदन का जीवंत दस्तावेज होता है, क्योंकि यथा स्थितिवाद के पोषक दी हुई व्यवस्था और सुख-सुविधाओं में ही अपने रचनात्मक जीवन की फलश्रुति देख लेते हैं और इस भूमि पर वे न केवल अपने आपसे धोखा करते हैं बल्कि पूरे रचनात्मक ज़गत से और मनुष्य मात्र के प्रति ली गई नैतिक जिम्मेदारी से अपना मुँह मोड़ते हैं और ऐसे लेखक हमेशा सत्ता के करीबी होते हैं और इसी मोड़ पर इनकी रचना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

अपने समय की आलोचना से अपने को जानने का पूरा [illegible] करती हैं और इस प्रक्रिया में डूबे हुए कवि लेखक किसी एक युग में ही नहीं बल्कि मनुष्यता के समूचे इतिहास में मिलते जायेंगे पर इनसे न तो समय का इतिहास लिखा जाता है और न ही साहित्य का इतिहास।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचनात्मक विकल्प वस्तुत: अपने समय की आलोचना से जन्मी गहरी मूल्य निष्ठा का प्रमाण होती हैं। मनुष्य अपने समय में मनुष्य के खिलाफ चल रहे तमाम षड्यंत्रों से मनुष्य को बचाने का जतन उसके द्वारा देखे गये रचनात्मक स्वप्न और रचनात्मक विकल्प में ही पूरे होते हैं। समकालीन समय और समाज में रचनात्मक विकल्प किसी आध्यात्मिक सूत्र और संकेत से न निकलकर अपनी दी हुई व्यवस्था में अपने संवैधानिक तंत्र में और अपनी पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया में विश्वास रखते हुए मनुष्य के द्वारा इस तंत्र में मनुष्य को बचाये जाने के देखे गए स्वप्न में ही आज का रचनात्मक विकल्प पूरा होता है और आज की आलोचना और रचना मनुष्य के सी विश्वास को बचाये जाने का जतन करते हुए समय को अर्थवान संदर्भों में रचती हैं। आज किसी किसान का पूरी पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ डटकर अपने खेत के किनारे खड़ा होना और खेत-खलिहान को बचाये जाने का संघर्ष ही रचना और आलोचना की सबसे बड़ी नैतिक जिम्मेदारी है। इसी मूल्यबोध के साथ आज की रचना और आलोचना अपने समय का नायक और अपना रचनात्मक विकल्प गढ़ती है। इस भूमि पर रचना अपनी समस्त रचनात्मक प्रक्रिया में मनुष्य के छोटे-छोटे हाथों पर उसके द्वारा देखे गये बड़े सपनों को पूरा करती है। रचना केवल भाषायी चमत्कार से या शैली मात्र से बड़ी नहीं होती रचना अर्थवान तभी होती है जब वह अपने समय को बड़ा बनाने की प्रक्रिया में न केवल अपने समय से टकराती है, बल्कि पूरी विकास प्रक्रिया को अपनी नैतिक चलनी से चालकर उस मनुष्य को बचाने का जद्दोजहद करती है जो हर तरह के चार, अत्याचार के प्रतिरोध में सदियों से अपनी जगह पर खड़ा है और व्यवस्था को बदलने के लिए बेचैन है, ऐसे मनुष्य को बचाये जाने का जतन और एक रचनात्मक विकल्प आम आदमी के पक्ष में बनाने का बड़ा दायित्व रचना और आलोचना मिलकर जब निभाती हैं तो साफ जाहिर है कि हर तरह के विपरीत दौर में भी मनुष्यता के पक्ष में रचनात्मक शक्तियाँ खड़ी हो जाती हैं। आज रचनात्मक को अर्थवान बनाने का और एक बड़े विकल्प को निर्मित करने का दायित्व एक साथ रचना और आलोचना दोनों पर आ पड़ा है। देखना यह है कि इस दायित्व को आज की रचनात्मक आलोचना कैसे पूरा करती है।

जे.आर.-25, सिविल लाइन्स
झालावाड़-326001 (राज.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समकालीन कविता और सम्प्रेषण के प्रश्न

● इन्दुशेखर तत्पुरुष

समकालीन कविता को लेकर यह प्रश्न प्राय: उठाया जाता रहा है कि यह सम्प्रेषणीय नहीं है। साधारण जन ही नहीं, पढ़ा-लिखा समुदाय और इससे भी आगे हिन्दी लिखने-पढ़ने वाले लोग भी जब यह शिकायत करते है, तो ऐसे प्रश्नों को टाला नहीं जाना चाहिए। यह जानते हुए कि बारम्बार उठाये जाने वाले इन प्रश्नों के हर बार दिये गये उत्तर और प्रतिक्रियाएँ लगभग एक सी होंगी, बहस जारी रखी जानी चाहिए। यह रूटीन चैकअप की तरह है जो समकालीन कविता के प्राण -परीक्षण में सहायता करता है।

यद्यपि ऐसा नहीं है कि यह प्रश्न समकालीन कविता के सम्मुख ही खड़ा किया जा रहा है। छायावादी कविता अथवा नई कविता भी इन प्रश्नों से जूझती रही है। छायावादी कविता के दौर में तो साहित्यनुरागियों के मध्य यह विनोद प्रचलित था कि जो समझ में न आये वह छायावादी कविता है। तो जब छन्द, अनुप्रास आदि गेयात्मक सुविधाओं से युक्त होने पर भी एक भिन्न भावभूमि वाली कविता की संप्रेषणीयता संदिग्ध मानी जा रही हो, तो नितान्त अगेयात्मक कविता के संप्रेषण पर प्रश्न चिन्ह लगे बिना कैसे रह सकता है?

प्रत्येक सृजन, चाहे चित्र हो या संगीत या साहित्य, अपनी सार्थकता भोक्ता को 'अच्छा लगने' वाला भाव ही उसके प्रति भोक्ता को आकर्षित करता है और वही आनन्दित भी करता है। यही कलाकृति का सौन्दर्य है। यहाँ हम एक चिरकालीन प्रश्न पर विचार करें कि क्या किसी कलाकृति का सौन्दर्य पूर्णत: कलाकृति में निहित है? इस प्रश्न के उत्तर के आधार पर हम सम्प्रेषण के सम्बन्ध में किञ्चित भिन्न दृष्टि से विचार कर सकेंगे। जो यह मानते हैं कि सौन्दर्य ऐकान्तिक रूप से कलाकृति में निहित है, तो इसके अनुसार यह मानना भी उचित ही होगा कि सम्प्रेषण का पूरा दायित्व कलाकृति का है। कोई कविता संप्रेषित हो पा रही है अथवा नहीं, यह केवल उस कविता पर निर्भर है। किन्तु जिनके मत में कलाकृति का सौन्दर्य कलाकृति और भोक्ता के साहचर्य से उनकी अन्त:क्रियाओं और उनके अन्तर्सबन्धों पर निर्भर है, उनके अनुसार संप्रेषण का दायित्व पूर्णत: कलाकृति पर नहीं ठहराया जा सकता। एक कविता के संप्रेषित होने में थोड़ी सी जिम्मेदारी पाठक या श्रोता की भी बनती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नई कविता और बोधगम्यता पर विचार करते हुए देवीशंकर अवस्थी ने लिखा है कि "सामान्य पाठक को यदि नई कविता (या छायावादी भी) दुरुह प्रतीत हो तो कुछ आश्चर्यजनक नहीं है और इसका वास्तविक समाधान अभिनवगुप्त द्वारा बताया गया 'विशदीभूतमनोमुकुर' ही है, न कि नई कविता को गाली देना।"

अवस्थी जी ने इस प्रसंग में भारतीय काव्यशास्त्र में वर्णित 'सहृदय' की अवधारणा को रेखांकित करते हुए पाठक के संस्कार की ओर इशारा किया है। एक सुधी आलोचक ने लगभग छः दशक पूर्व नई कविता के संदर्भ में जो बात कही थी वह आज समकालीन कविता के सन्दर्भ में भी उतनी ही सार्थक प्रतीत होती है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में जिस 'सुमनस् प्रेक्षक' की बात कही है, वही आगे चलकर भारतीय काव्यशास्त्र में 'सहृदय' के रूप में परिभाषित हुआ। कविता का सच्चा गृहिता।

सहृदय की परिभाषा करते हुए अभिनव गुप्त ने 'ध्वन्यालोक' में लिखा है:

"येषां काव्यनुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्यीभवन योग्यता ते स्वहृदयसंवादभाजः सहृदयाः" -अर्थात् कविता के निरन्तर पठन-श्रवण-मनन आदि अभ्यास के कारण जिसके दर्पण की तरह विशद हुए मन में वर्णित वस्तु के तन्यीभवन (दर्पण के प्रतिबिम्ब की तरह हू-ब-हू पन की)योग्यता हो, वह सहृदय है।

अतः यहाँ यह अवश्य देखा जाना चाहिए कि संप्रेषण का प्रश्न कौन उठा रहा है? क्या वह जो कविता को मनोरंजन मात्र का साधन मानता है? अथवा वह जो अपने 'चना जोर गरम' की बिक्री बढ़ाने के लिए कविता अपनी संवेदनाओं और अपूर्व जीवनानुभवों से परिचित कराने का अनन्य माध्यम है? मानवीय संवेदनाओं के प्रति घनघोर उदासीन इस समकाल में जिसे समकालीन कवि हेमन्त शेष के इस विश्वास पर विश्वास है कि, "एक बार फिर/ कविता ही देखेगी छिलते हुए दृश्यों के गुप्त आँसू/ और/ संसार सोता और जागता रहेगा/ अपनी शाश्वत उदासीनताओं के साथ।" (कवि प्रस्थानः 'जगह जैसी जगह')

यही नहीं, अपितु यहाँ यह भी देखा जाना चाहिए कि समकालीन कविता के सन्दर्भ में यह प्रश्न क्या वह 'पाठक' उठा रहा है, जिसने नई कविता को पढ़ने की रूचि और संस्कार अर्जित कर लिया है अथवा वह 'श्रोता' जिसकी रूचि और संस्कार में अभी भी कविता का अर्थ अनिवार्यतः पद्य होता है? जो यह मानने को तैयार नहीं कि बिना छंद (-गेयता), बिना अलंकार (तुक)या बिना भावोत्तेजन के भी कोई कविता संभव हो सकती है?

समस्या यह कि साहित्य के साहित्य गेय-गीत, गजल, छंद, दोहा आदि जिनकी रूचि और संस्कार की आखिरी सीमा है, वे उस समकालीन कविता पर प्रश्न उठाते हैं जो उनकी पकड़ से परे है। 'दिगन्त' में त्रिलोचन लिखा है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लड़ता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा।
नये चित्र के साथ, नई देता हूँ भाषा।।

समकालीन कविता के मिजाज को एक सूत्र में समझने के लिए इससे अच्छी उक्ति ढूँढ़ना मेरे लिए मुश्किल है। तो, जब कविता जीवन के संघर्षों, स्वप्नों, आशाओं, आंकाक्षाओं को एक नये चित्र और नयी भाषा में उतारने का संकल्प लेती है तो संप्रेषण इतना पारदर्शी भी नहीं हो सकता कि कवि की मूल प्रतिज्ञा ही खंडित हो जाए। पारदर्शी संप्रेषण चित्रों और अभ्यस्त भाषा में ही संभव है। 'नये चित्र के साथ नई भाषा' में नहीं।

संप्रेषणीयता का प्रश्न उठाते समय प्रतिप्रश्न यह भी है कि कविता में संप्रेषण हम श्रोता की दृष्टि से परख रहे होते हैं या पाठक की दृष्टि से? क्योंकि सुनते हुए की ग्राह्यता और पढ़ते हुए की ग्राह्त में जमीन-आसमान का अंतर होता है। किसी अत्यधिक लोकप्रिय गीत, जिसकी सीडी लाखों की संख्या में बिकती हो, को मुद्रित कर पुस्तिका तैयार की जाए तो उसकी कुछ सैकड़ा प्रतियाँ भी बिक जाएँ तो यह बड़ी बात होगी। इसी तरह कोई सुप्रसिद्ध काव्य संग्रह, जिसके कई संस्करण निकल चुकने के बाद भी माँग बनी रहती है, कि सीड़ी तैयार की जाए तो उसके ग्राहक भी शायद ही मिलें।

संप्रेषण सिद्धान्त के कतिपय अध्येयताओं का मानना है कि वक्ता (कवि) की प्रस्तुति के श्रोता तक संप्रेषित होने में शाब्दी संप्रेषण की भूमिका केवल बीस प्रतिशत होती है। शेष संप्रेषण वक्ता और श्रोता के मध्य की भौतिक संस्थिति और अन्त:क्रियाओं के आधार पर होता है, जिसमें हाव-भाव, पारस्परिक दूरी, ध्वनि का आरोह-अवरोह, यति-गति, पारस्परिक भाव-प्रतिभाव आदि सम्मिलित हैं। संप्रेषण का केन्द्रीय तत्त्व शब्द होने के बावजूद शब्देतर घटकों का महत्त्व कम नहीं है।

वही श्रोता जब पाठक में रूपान्तरित होकर कविता से साक्षात्कार करता है तो संप्रेषण के सभी शब्देतर घटकों को वहाँ अनुपस्थित पाकर उसे एक झटका सा लगता है। और संप्रेषण प्रक्रिया प्रभावित होती है।

वही श्रोता जब पाठक में रूपान्तरित होकर कविता से साक्षात्कार करता है तो संप्रेषण के सभी शब्देतर घटकों को वहाँ अनुपस्थित पाकर उसे एक झटका सा लगता है और संप्रेषण प्रक्रिया प्रभावित होती है।

कविता जब सुनी जा रही होती है तो उसकी संप्रेषणीयता-अंसप्रेषणीयता का निर्धारण तत्क्षण होता है और यह जितना कविता पर निर्भर होता है उतना ही उसके प्रस्तुतिकरण पर निर्भर होता है जबकि पाठक, कविता को पढ़ते समय उसकी संप्रेषणीयता का निर्धारण अपनी सुविधानुसार करने के लिए स्वतन्त्र है। कवि इसमें कही आड़े नहीं आता।

बावजूद इसके प्रत्येक सृजन संप्रेषित होने के लिये ही संभव होता है, समकालीन कविता संप्रेषण के लिए इस तरह लिलाँयदी नहीं मरती तो इसलिए कि उसे इस सत्य का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
इलहाम हो गया लगता है कि उसको दुलार और दीर्घायुष्य साधारण सभाओं के सार्वजनिक प्रस्तावों द्वारा नहीं, चुनिन्दा संवेदनशील सहृदयों द्वारा ही मिलेगा। जो इस बात की परवाह किये बिना कि कविता उन्हें आमंत्रित कर रही है या नहीं, स्वयं आगे होकर उसकी कुंडी जा खटखटाते हैं। इसलिए समकालीन कविता में संप्रेषण की उपलब्धता को महसूस करने का दृष्टिकोण थोड़ा भिन्न होगा, इस बात को समझा जाना चाहिए।

वह नल की पाइप लाइन में विद्यमान तरह होती है। पाइपलाइन में पानी होने के बावजूद टोंटी तो स्वयं पाठक को ही खोलनी पड़ेगी। पानी इसमें मददगाार साबित नहीं होगी। बेशक, किसी पाइप में भरपूर प्रवाह, किसी में मन्द प्रवाह, किसी में रूक-रूक कर क्षीणधार, कोई लाइन बिल्कुल रीती भी हो सकती है। किन्तु इसका भी पता टोंटी खोलने पर ही चलेगा।

छत पर जो घड़े सीधे रखे थे वे बारिश में लबालब भर गये। उनकी नजर से देखें तो बारिश में जल का संप्रेषण भरपूर था। टेढ़े-मेढ़े रखे घड़े यह कहते नजर आये कि बारिश तो खूब हुई, मगर जल के संप्रेषण की कमी थी। बिल्कुल औंधे रखे घड़ों का, जो कि छत पर सर्वाधिक थे-रोना यह रहा कि वहाँ बारिश हुई भी थी या केवल शोर-शराबा, पता ही नहीं चला।

सारा दोष घड़ों का नहीं, उसका भी है जो उनके रीते रह जाने पर कभी बारिश की तिरछी बौछार को, कभी उन घड़ों को कोस रहा है। काश! अपने भीगने की परवाह न कर वह उन लुढ़के पड़े घड़ों को ऐसा हल्का सा स्पर्श दे आता जो उन्हें 'ऊर्ध्वमुख' कर देता।

6-ए, विश्वकर्मा नगर तृतीय
महारानी फार्म, दुर्गापुरा, जयपुर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य में ठेकेदारी प्रथा

● डॉ. संदीप अवस्थी

हर वक्त इश्क इश्क क्या करता है
कभी तो खुदा खुदा भी किया कर।

आज के संक्रमित मूल्यविहीन, अवसरवादी रेडिकल समय में सर्वत्र मार्केटिंग, अपलिफ्टिंग, और पूल बनाकर साहित्य के ठेकेदार बनने का दौरा पूरे शबाब पर है। वहाँ कोई आश्चर्य नहीं पहले नंबर प्रेमचंद जी का लगा और उन्हें दलित विरोधी, स्त्री विरोधी, आर.एस.एस. की विचारधारा का हिंदुवादी आदि न जाने क्या क्या तथाकथित साहित्यकारों द्वारा कहा जाएगा। प्रेमचंद ने साहित्य ही नहीं वरन् हर वर्ग चाहे किसान हो, जमींदार हो, शहरी बाबू, स्त्रियाँ, ग्रामीण परिवेश, वहाँ के पात्र, यहाँ तक कि जानवर ही (हीरा-मोती, कौन भूल सकता है) क्यों न हो सब पर उन्होंने बेहद प्रभावशाली ढंग से ऐसा अद्भूत लिखा है, ट्रैड सेट किया है वह ऊँचाई आज भी अविजित है। होना यह चाहिए था कि हम अपने लेखकीय अनुभवों को, शब्दों को और बेहतरीन बनाने और सतत् लिखते ही नहीं बल्कि समाज के सभी क्षेत्रों, बस्तियों में जाकर के उनका पाठ भी करते तो हमारा लेखन और सुधार करता और हम ऊँचाईयों को छूते। लेकिन कई भाईयों ने इसके अतिरिक्त दूसरा रास्ता अपनाया और प्रेमचंद को दलित विरोधी, हिन्दुत्ववादी शक्तियों के काम का और जनवादी, प्रगतिशील विरोधी कहकर अपना क्षुद्र स्वार्थ सिद्ध करने की असफल कोशिश की।

बिना गहराई में गए अध्ययन किए एक मित्र तो यह भी खोज लाए कि वर्ष 1920 में नौकरी से जो प्रेमचंद ने इस्तीफा दिया था वह असहयोग आन्दोलन के तहत राष्ट्रभक्ति के कारण नहीं अपितु अपनी बीमारी के कारण दिया था। लेकिन यह नहीं जान पाए कि मुंशी प्रेमचंद एक का नहीं बल्कि उनके पार्टनर का प्रथम नाम मुंशी होने से बना है।

अब यह बात तो इन मित्रों ने भारी रिसर्च के साथ खोज निकाली की पेशिच से निदान पाने के लिए प्रेमचंद ने सरकारी नौकरी छोड़ दी न कि स्वाधीनता आन्दोलन के प्रभाव के कारण। मित्रों, सत्य अन्वेषी होता है। एक ही घटना, यथा प्रेमचंदजी का साहित्य और महत्ता लीजिए, वह किसी के मन में प्रेरणा, शोध और जीवन में बेहतर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
इंसान बनना जगा सकता है तो किसी के मन में ईर्ष्या की दहकती ज्वाला तो कोई उस पर चुप, निस्पंद भी रह सकता है।

ऐसे ही प्रेमचंद को निशाना बनाने का असफल प्रयास किया जा रहा ही था कि दूसरा झाँसी की रानी का मोर्चा खुल गया। मेरे अजीज, अविनाश ने यदि झलकारी बाई का नाम नहीं सुना तो यह उनकी नहीं सुभद्राकुमारी चौहान की गलती हो गई। जबकि देश के अनेक नगरों में कई झलकारी नगर, झलकारी बाई की मूर्तियाँ लगी हैं। लेकिन आगे बढ़ने की कुछ लोगों में ऐसी जल्दबाजी हुड़क है कि वह अपनी अज्ञानता का प्रर्दशन करने से बाज नहीं आते। आगे यह भी लिखा गया कि सुभद्रा कुमारी चौहान बेईमानी कवयित्री थी। जी हाँ, सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्यक विरोधी भी यह बात नहीं कह सकते लेकिन मूर्खता ही परम आनंद है- की उक्ति को चरितार्थ यह आजकल के युवा और इनके पीछे गुटबाज साहित्यकार नहीं करेगें तो कौन करेगा?

यह क्यों कहा गया? क्योंकि झलकारी बाई के विषय में उस लेख के लेखक की जानकारी यह कहती थी। उसका ज्ञात का स्त्रोत अव्वल तो है ही नहीं यह पिष्ठपेषण पर ही चल रहे हैं और ज्यादा हुआ तो गूगल शरम् गच्छामि। अरे, बावलो, गूगल पर डाटा कौन, कहाँ की रिसर्च से डालता है जरा यह पता कर लोगे तो आँखे खुल जाएँगी। लोकप्रिय वेबसाइट होना और साहित्य के, इतिहास के क्षेत्र में शुद्ध, विश्वसनीय होना दो अलग अलग बातें हैं।

क्या यह कहना चाहते हैं यह कि दरअसल लक्ष्मीबाई बहादुर नहीं थीं? नानासाहेब, तात्या टोपे, बहादुरशाह जफर, मंगल पाण्डे आदि असंख्य वीरों के साथ स्वतंत्रता संघर्ष की रणनीति में भाग लेने वाली वीरागंना नहीं थी? ''वह तो उसकी हमशकल झलकारी बाई ने युद्ध किया अत: वह बहादुर हुई। इतिहास की सामान्य सी समझ रखने वाले मेरे मुहल्ले के 12वीं क्लॉस के विद्यार्थी से मैंने पूछा यह लेख पढ़ने के बाद कि, भई जरा बताओ, राजा महाराजाओं के युद्ध के समय हमशकल क्यों रखे जाते थे?'' उस बालक ने जवाब दिया ''जी, युद्ध में जब राजा रानी फँस जाए और युद्ध के मैदान में उतारा जाता था।'' यह जानकारी पढ़ने-लिखने वाले हर विद्यार्थी को है लेकिन हमारे कुछ शोध छात्रों और उनके आकाओं को नहीं है। इसी कड़ी में आल्हा-उदल के बहाने क्षत्रियों को भी ले लिया गया कुछ यूँ कि आल्हा उदल दलित और वीर थे शेष सभी युद्ध करने वाले बेकार थे। इस कुतर्क की परिणति सोलह से अधिक मुकदमों के रूप में हुई, जैसे अपेक्षित था। आखिर आज आपके हाथ में कलम है तो उसका सदुपयोग करें, दुरुपयोग की जगह। यर्थाथ को रिसर्च और संदर्भों की कसौटी पर देखें। फिर स्त्रोत की विश्वसनीयता देखें। क्योंकि कई स्त्रोत, जानकारियाँ हैं, उनकी विश्वनीयता की पुष्टि पहलें करें। यह नहीं कि आपके मतलब की आलोचना किसी गुमनाम लेखक ने लिख दी तो वह उठा लाए आप गर्व के भाव से बिना यह देखे कि उसके समकालीन अन्य लेखक क्या कहते है? जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
आपके काम के नहीं हुए उन्हें सवर्ण कहकर खारिज कर दिया। कितनी शर्म की बात है कि जिन विद्वानों ने आपके मन माफिक नहीं कहा तो दोष उनके सवर्ण होने का हो गया? आप (कोशलेंद्र) पर अँगुली इसलिए उठाई कि आप बिना जाने बूझे तथ्यों से खिलवाड़ करके उसमें अपना मनचाहा निष्कर्ष निकाल रहे हैं। इसे भी आप जाति पाति का नाम दे रहे हैं। दरअसल सोच को बड़ा करने की जरूरत है जो कुछ ही दलित चिन्तक कर पाऐं हैं। लेकिन बगुलों के बार-बार चिल्लाने से सूरज अस्त नहीं होता।

भारतीय शौर्य, पराक्रम, सौहार्द्रता, धार्मिक समन्वय की लंबी अक्षुणण परंपरा रही है। यह इन पंक्तियों से स्पष्ट है, ''झलकारी बाई, झाँसी की रानी की सेना में महिला शाखा दुर्गादल की सेनापति थी। यह तथ्य इन्हीं के लेख में है। इससे निकाला उल्टा निष्कर्ष कैसे इनकी सोच, मानसिकता को उजागर करता है यह आपने देखा। अब वह देखिए, जो स्पष्टत: दिखता है, जिसे नकारकर इन नैनो विद्वानों ने उन महान ऐतिहासिक नारियों का अपमान करने की धृष्टता की है। वह यह कि झलकारी बाई अपने शौर्य और वीरोचित स्वभाव के कारण उत्तरोतर वितान चढ़ती रानी लक्ष्मीबाई की प्रियपात्र रही और महिला सेनापति के पद पर दलित महिला सम्मानित हुई (इसलिए कि उस वक्त दलित दलित क्रन्दन करने वाले हमारे यह मित्र नहीं थे) दुर्गादल वाहिनी की झलकारी बाई को हिन्दूवादी, आर.एस.एस. विचारधारा की, यह मैं नहीं आपके ही दूसरे मित्र, उन्हें घोषित कर देंगे। जैसे उन्होंने प्रेमचंद को ''गोदान'' में दो सौ बार ईश्वर का नाम लेने के अपराध में किया है। बहरहाल दुर्गादल सेनापति एक बहादुर दलित नारी थी। इसका रानी लक्ष्मीबाई ने ही नहीं वरन संपूर्ण राष्ट्र ने कृतज्ञता ज्ञापन किया है। कम से कम देश में झलकारी बाई के नाम पर नाना करते सौ से अधिक स्थल होंगे। अजमेर में ही झलकारी नगर, झलकारी बस्ती हैं।

यह वितंडा निबटा, अपनी मौत मरा, उधर एक और नया शुरू हुआ, अमुक वर्तमान रचनाकार की रचनाएँ प्रेमचंद से सर्वश्रेष्ठ तो हैं ही विश्व में भी सबसे श्रेष्ठ कहानीकार वही है। इसे अपने लेख का विषय बनाए और अमुक फाउंडेशन की तरफ से 5001 रूपये का पुरस्कार पाइए। कुछ तथाकथित नाम दे दिए (जिनसे कीचड़ उन पर भी लगे अकेले पर नहीं) कि यह पहले से ही अमुक जी को विश्व का सर्वश्रेष्ठ कहानीकार घोषित कर चुके हैं। इसे दार्शनिक तर्कशास्त्र की भाषा में कहते हैं, पूर्वाग्रही होकर के क्लोसड वाक्य के द्वारा यह स्पष्ट कर देना कि आप अमुक जी को ही सर्वश्रेष्ठ करवाना चाहते हैं।

मेरे देश के प्रबुद्ध मित्रों, पाठकों, यह सारी बानगियाँ क्या दर्शाती हैं? इसमें मेरा एक भी नहीं है सारे संदर्भ बता रहे हैं कि हमारे मित्रगण न जाने क्यूँ जल्दी में है। वह चाहते हैं इस देश का नाम भारत, हिन्दुस्तान में बदलकर झलकारी देश, सोरत्न देश ही कर दिया जाऐ। भूतकाल की गलतियाँ आधी से अधिक पहले ही ठीक हो गई, शेष आजादी के बाद हो रही हैं। भेदभाव, पक्षपात खत्म हो रहा है। और आप चाहते हैं, उसे पुर्नजीवित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
करा जाऐ? जिन्होंने आपके बचपन में आपके साथ अन्याय किया उसका बदला सभी से लिया जाए? साथ ही यदि आप अपनी परिश्रम लगन और सरकारी सुविधाओं के तहत कुछ पढ़ लिखा गए हैं तो क्या लेखकों (स्थापित और समकालीन)को चुन चुनकर निशाना बनाएगें? आप ध्यान रखें घुसपैठिए कहीं भी जगह नहीं बना पाते। यह ऐसा ही है जैसे कुछ स्वार्थी नेताओं ने आजादी मिलते ही अपने लिए मंत्री पद, लाभ के पद बाँट लिए और आजादी के संघर्ष को कैश कर लिया। उधर बहुत से सिद्धांतवादी, गाँधीवादी इसी में संतुष्ट और खुश दिखे कि अंग्रेजों को, जिनके विशाल साम्राज्य के विषय में कहा जाता था कि उसमें सूरज कभी नहीं डूबता, हटाकर अपने आजाद देश की छाँव में जीवन व्यतीत करेगें। तो यह नवगठित पूल (??) ऐसे ही लोगों का समूह लगता है जो अपने कुछ बन जाने को दोनों हाथों से कैश कर रहा है, हर क्षेत्र में। कुछ लोगों की निगाह में स्वार्थी होना, अवसरों को झपटना, अपनी जगह बनाना कतई बुरा नहीं हे, अच्छा कार्य है। परन्तु उसकी आड़ में दूसरों को गरियाना, धक्का देना, बिना जाने बूझे अपने क्षुद्र स्वार्थों की रोटी सैंकने का असफल प्रयास, निदंनीय और स्वयं की अल्पज्ञता प्रदर्शित करने वाला ही कहा जाएगा।

यह लेख पढ़ते पढ़ते किसी भी मेरे भाई-बहन के मन में यह कुर्तक आ सकता है कि प्रेमचन्द झाँसी की रानी, आल्हा उदल को वर्ग विशेष के लोगों ने कुछ कह दिया तो प्रतिक्रिया हो गई। तो उन्हें ध्यान होगा कि हाल ही में प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय के कुलपति एवं एक निदेशक महोदय, (दोनों सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं) ने प्रेमचन्द को ससम्मान कोट करते हुए एक शब्द विशेष का इल्जाम लगाया तो पूरे देश ने निंदा की है उनकी। (जनसत्ता 8, 15 अगस्त 2010, रविवारीय) कमल किशोर गोयनका, गिरिराज किशोर, अशोक बाजपेयी (स्वर्ण) सभी ने मुक्त कंठ से दोनों के पूर्ण बहिष्कार की अपील की है। अब आप देखें भारतीय प्रबुद्ध वर्ग की सहिष्णुता की आप सभी के इतने सुस्पष्ट गलत और क्षुद्र स्वार्थों पर सभी ने आपको क्या कहा?

मेरे मित्रों, विनम्र अनुरोध है कि आप सभी को मुख्यधारा में आकर अपनी जातपात, ओछी, राजनीति भूलकर देश को, समाज को, बिना घृणा, भेदभाव स्वार्थ के मजबूत करने का कार्य प्रेम एवं निष्ठा से करना चाहिए। आखिर में आप सभी से पूछना चाहता हूँ कि इन सब बातों के परे कितने गरीब, असहाय, अपने अपने तबकों के ही बच्चों, महिलाओं, व्यक्तियों के लिए आपने अपने गाँव, घर में विद्यालय, पुस्तकालय, अथवा कहीं ओर कुछ सहयोग किया है? आप में एक लेखक कह दे कि हाँ, मैं अमुक बच्चे की शिक्षा का शुल्क उसकी पढ़ाई पूरी होने तक उठाने को तैयार हूँ? जनाब आप जानते भी है 5001 के पुरस्कार में कितने बालकों की साल भर की कॉपी-किताबों, यूनिफार्म का खर्चा निकल आता है? क्योंकि सरकार ने संविधान के 93 वें संसोधन के तहत शिक्षण शुल्क तो वैसे भी सभी का माफ कर रखा है। राजनीति करना और अपने को अपने हाथों स्थापित करना,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तित्वों पर कीचड़ उछालना रूप से सभी लोगों में बिना पूर्वाग्रह के मिलें। वर्तमान को बेहतर बताऐं न कि भविष्य की राजनीति करके अपनी प्रतिष्ठा को धूमिल करें।

संदर्भ :

1. 'घास वाली...' रत्न कुमार साँभरिया, लमही, अक्टू.-दिस. 2009 पृष्ठ 114
2. 'मुंशी प्रेमचंद, तुलसीदास, भगतसिंह', रत्नकुमार साँभरिया, लोकगंगा, अगस्त 10, पृष्ठ 22
3. 'मुंशी प्रेमचंद, तुलसीदास, भगतसिंह', रत्नकुमार साँभरिया, लोकगंगा, अगस्त 10, पृष्ठ 22
4. कथादेश, जून 2010, 'वह तो झाँसी की झलकारी थी', पृष्ठ 75
5. कथादेश, जून 2010, 'वह तो झाँसी की झलकारी थी', पृष्ठ 75
6. कथादेश, जून 2010, 'वह तो झाँसी की झलकारी थी', पृष्ठ 75
7. हंस, अगस्त 2010, 'कोई इतिहास आखिरी नहीं'-पृष्ठ 137
8. हंस, अगस्त 2010, 'हंगामा है क्यूँ बरपा'- पृष्ठ 139
9. कथादेश, जून 2010, 'वह तो झाँसी की झलकारी थी', पृष्ठ 75
10. लोकगंगा, अगस्त 2010, ''मुंशी प्रेमचन्द तुलसीदास, भगतसिंह, रत्नकुमार सांभरिया पृष्ठ 22
11. हंस, अगस्त 2010, पृष्ठ 38

66/26 न्यू कॉलोनी

रामगंज, अजमेर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रलेस का अंतर्द्वंद्व

● गोविन्द माथुर

प्रगतिशील लेखक संघ के 75 वर्ष पूर्ण होने पर लखनऊ में 8–9 अक्टूबर, 2011 को समारोह आयोजित किया गया। प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम सम्मेलन वर्ष 1936 में लखनऊ में हो सज्जाद जहीर के प्रयासों से आयोजित किया गया था। प्रथम सम्मेलन के सभापति उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद थे। पिछले 75 वर्षों में प्रगतिशील लेखक संघ एवं अन्य वामपंथी विचारधारा के संगठनों ने समाज को कितना प्रभावित किया, इस पर कई बार विचार किया जा चुका है। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के 25–30 वर्ष तक समाज और साहित्य पर वामपंथी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता था, किंतु वामपंथी दल के विभाजन के बाद विचारधारा गौण होने लगी, कुछ वर्षों के बाद लेखक संघ का भी विभाजन हो गया। प्रगतिशील लेखक संघ के विभाजन के बाद एक नई ऊर्जा की जरूरत महसूस की जा रही थी किंतु ऐसा हुआ नहीं।

मुंशी प्रेमचंद ने लखनऊ में आयोजित प्रथम सम्मेलन में सभापति के रूप दिए अपने उद्बोधन में कहा था कि–''जिन्हें धन वैभव प्यारा है, साहित्य मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं है, यहां तो उन उपासकों की आवश्यकता है जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो'' किंतु ऐसे साधक साहित्य में नहीं रहे, धन, वैभव, पद और पुरस्कार की चाह ने लेखकों में भटकाव पैदा किया, ऐसे लेखकों की कमी महसूस की जाने लगी जो लेखक संघों में पूर्णरूपेण सक्रिय रहकर सार्थकता महसूस करते। प्रलेस की सबसे बड़ी कमजोरी यह रही कि वह सत्तासीन कांग्रेस का अनुयायी बना रहा और इसी कारण उसके कार्यकर्ता लाभान्वित होते रहे।

सोवियत संघ के विघटन के बाद तो ये भ्रम फैलाया गया कि विचारधारा का अंत हो चुका है। देश में पूंजीवाद के उदय के बाद वामपंथी विचारधारा के लेखक संघ लगभग निष्क्रिय हो गए, लेखक संघ जीवित तो हैं, किंतु हिल–डुल नहीं रहे हैं। प्रांतों में लेखक संघ की शाखाएं हैं किंतु जिलों, कस्बों और गांवों में इकाइयों का अस्तित्व नहीं है। प्रांतीय शाखाएं वर्ष में एक–दो कार्यक्रम रखकर अपने होने का अहसास मात्र करा देती हैं।

प्रो. कमला प्रसाद के राष्ट्रीय महासचिव बनने के बाद प्रगतिशील लेखक संघ में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कुछ ऊर्जा का संचार हुआ था। कमला प्रसाद जी ने प्रांतों का दौर कर सक्रियता लाने का भरपूर प्रयास किया था। प्रगतिशील लेखक संघ ने उन्हें अपना कमांडर स्वीकार कर लिया था, किंतु कमला प्रसाद जी की आकस्मिक एवं असामयिक मृत्यु ने एक बार फिर शून्य पैदा कर दिया है।

8-9 अक्टूबर, 2011 को लखनऊ में हुए 75 वर्ष के समारोह से ये उम्मीद की जा रही थी कि प्रगतिशील लेखक संघ में जान फूंकने के लिए कुछ सार्थक प्रयास किए जाएंगे, किंतु यह समारोह एक औपचारिक समारोह बन कर रह गया। इस समारोह में न तो अधिक संख्या में लेखकों को आमंत्रित किया गया और न ही आयोजकों में उत्साह दिखाई पड़ा।

लखनऊ में अक्टूबर, 1936 में आयोजित प्रथम प्रगतिशील लेखक सम्मेलन को सभापति मुंशी प्रेमचंद के भाषण के कारण ऐतिहासिक सम्मेलन माना जाता है। माना यह भी जा रहा था कि लखनऊ में अक्टूबर, 2011 में आयोजित समारोह प्रगतिशील लेखक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. नामवरसिंह के भाषण के लिए यादगार साबित होगा। साप्ताहिक समाचार पत्र 'शुक्रवार' (28 अक्टूबर-3 नवम्बर) के अंक में प्रकाशित वीरेन्द्र यादव के आलेख में छपा है कि समारोह का उद्‌घाटन करते हुए शीर्षस्थ समालोचक और प्रलेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. नामवर सिंह ने दलित विमर्श को ही खारिज नहीं किया, बल्कि उन्होंने ये तक कह डाला कि "आरक्षण के चलते दलित तो हैसियतदार हो गए हैं, लेकिन बामन-ठाकुर के लड़कों की भीख मांगने तक की नौबत आ गई है, उन्होंने ये खिन्नता भी प्रकट की कि आप (सवर्ण) चाहे जितना इनका (दलित) समर्थन करें, ये आपके होने वाले नहीं हैं।"

डॉ. नामवरसिंह का यह वक्तव्य लेखकों एवं लखनऊ के समाचार पत्रों में चर्चित रहा, किंतु तब डॉ. नामवर सिंह ने इसका कोई खण्डन नहीं किया। साप्ताहिक समाचार पत्र 'शुक्रवार' में वीरेन्द्र यादव के आलेख प्रकाशित होने के बाद डॉ. नामवरसिंह ने इस वक्तव्य का खण्डन किया। यूनीवार्ता द्वारा प्रसारित समाचार के अनुसार डॉ. नामवर सिंह ने 'शुक्रवार' पत्रिका में अपने बयान से उठे विवादों पर सफाई देते हुए कहा-"साहित्य में किसी तरह का आरक्षण नहीं होना चाहिए, लेकिन इसका अर्थ ये नहीं है कि वह दलितों, आदिवासियों और पिछड़ी जातियों को मिलने वाले आरक्षण के विरोधी हैं।" डॉ. नामवर सिंह ने यह भी कहा कि "श्री यादव ने मेरी बात को तोड़-मरोड़कर पेश किया है। मैंने साहित्य में आरक्षण का विरोध किया था, न कि समाज में आरक्षण का।"

डॉ. नामवर सिंह अब चाहे कुछ कहें किंतु इससे यह तो ज्ञात हो गया कि उनके मन में क्या चल रहा है। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि वर्ष 1936 में जिन उद्देश्यों को लेकर प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी, आज 75 वर्ष बाद प्रगतिशील लेखक संघ अपने उद्देश्यों से कितनी दूर आ गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मशालें

• सुरेन्द्र अंचल

पात्र

शकूरा	:	घायल, पाक-पैंटन टैंक ड्राइवर
पाक फौजी ऑफीसर		
उस्मान	:	पाक सैनिक
शफफी	:	पाक सैनिक
मोहन, अहमद	:	भारतीय सैनिक
ऑफीसर	:	भारतीय ऑफीसर
अन्य सैनिक	:	चार

(पर्दा खुलता है नाम पट्ट पर लिखा है पाक सीमा हाजी पीर दर्रा दो किलोमीटर। एक घायल पाक सैनिक घिसटता हुआ मंच पर आता है।)

घायल : *(कराह)* या...अल्लाह मर गया...। नहीं बचूँगा। ओह...। मिया उस्मान...। कर्नल सा...ब। (हताश)...कोई सुनता है? हाय *(उखड़ती सी साँस)*...पा...नी...। पा...नी...। दम घुट रहा है। या अल्ला...ह।

(एक फौजी अफसर का प्रवेश)

ऑफीसर : *(रोब)* कौ...न? *(स्वागत)* ना जाने कौन कराह रहा है? ...दोस्त है या दुश्मन। *(आवाज देता है)* ...उस्मान! सूबेदार उस्मा...न...।

उस्मान : *(प्रवेश)* यस सर!

ऑफीसर : *(रोब)* देखो तो! यहाँ कहीं कोई घायल मगरिब की नमाज के वक्त कैसा कराह रहा है। पानी माँग रहा है। पता लगाओ दोस्त है या दुश्मन?

उस्मान : *(सेल्यूट)* यस सर!

घायल : *(कराह)* पा...नी...।

(उस्मान घायल तक पहुँचता है)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation.Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उस्मान : *(चौंककर)* अरे! यह तो शकूरा *(गले में लटकती केतली से पानी पिलाकर आवाज देता है।)* कर्नल सा...ब। शकूरा जख्मी पड़ा है। पैंटन-टैंक का ड्राईवर...र...।

नेपथ्य : *(अफसर)* शफी ओ रे शफी...। देखो। उधर अपना शकूरा पैंटन का ड्राइवर जख्मी पड़ा है। उस्मान है वहाँ, तुम भी जाओ। मदद करो, चौकी तक पहुँचा दो। वहाँ कम्पाउण्डर हैं! जल्दी।

(अंधेरा होता है-फिर प्रकाश होता है। पाक सैनिक चौकी-कर्नल कुर्सी पर व दो अन्य सैनिक...एक तख्ते पर बैठे चाय पी रहे हैं। घायल शकूरा को वे हाथों में उठाकर लाते हैं।)

ऑफीसर : शाबास! ले आए शकूरा को! अरे इस कदर जख्मी...? या खुदा...!

(कम्पाउण्डर फर्स्ट एड करने लगते हैं)

शकूरा : या अल्ला...ह। वालिद से अब मुलाकात नहीं होगी। प्यारी फातिमा बी को शकूरे का सला...म। आ...ख...री। मैं कहाँ हूँ?

ऑफीसर : *(पानी पिलाता है)* जाँबाज शकूरे...! तुम्हें कुछ नहीं होगा। अब तुम हाजीपीर दर्रे के पास वाली पाक चौकी में आ गए हो। यहाँ...हिन्दुस्तानी चिड़िया भी पर नहीं मार सकती। डरो मत! लो थोड़ी अफीम खा लो। हमारे दोस्त चीन ने दर्द कम करने के लिए नायाब तोहफा भेजा है। खालो! ...तुम तो पैंटन टैंको की टुकड़ी में थे न? विदेशों से प्राप्त ये पैंटनटैंक तो अजेय और सर्वाधिक सुरक्षित माने जाते हैं, फिर तुम्हारी यह हालत...?

शकूरा : *(कराह)* ओफ! हिन्दुस्तानी फौजियों से तो खुदा ही निपटे। कर्नल सा...ब। उन्होंने फकत हथगोलों से ही पैंटन टैंकों को मिट्टी के घरोंदों की तरह रौंद दिए। *(आक्रोश)* मैंने अपनी आँखों से पैंटनों के परखच्चे उड़ते देखे हैं। मेरा पैंटन टैंक ऐसा बिखरा कि जैसे फटाका फूटा हो। धड़...धड़ाम...धड़ाम...। मुझे तो खुदा ने ही बचाया है। हाँ, सावधान हमारी सीमा में कुछ हिन्दुस्तानी घुसे हुए हैं। ...आह! पानी...नी...। पा...नी!

उस्मान : हमारी सीमा में?

ऑफीसर : नामुमकिन! ख्वाब में भी नहीं। आ भी जाए तो हमारे पास गोलें बारूद हथियारों का इतना जखीरा है कि हम कबाब बना देंगे उन हिन्दुस्तानी भेड़ों का।

शकूरा : साँस रुक रही है। अल्ला...ह। *(हिचकी)*

उस्मान : *(चीख)* शकूरा...!

ऑफीसर : शकूरा खुदा को प्यारा हुआ। दफन की व्यवस्था करो?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(मंच पर अँधेरा धीमी आवाज में सारे जहाँ से अच्छा...। की धुन दर्शकों को बाँधे रखती है फिर से प्रकाश होता है। जंगल, तीन भारतीय सैनिक, पेड़ों के पत्तों से अपने तन को ढके हुए बैठे हैं।)

एक : *(रायफल साफ करता हुआ)* सारे जहाँ से अच्छा...हिन्दोस्ताँ हमारा।

दूसरा : *(फुसफुसाकर)* अबे ओ, तानसेन की बिगड़ी औलाद-अहमद। चुप्प यह सीमांत है, खाला का घर नहीं। हम पाकिस्तानी सरहद में हाजीपीर दर्रे में फँसे हुए हैं। भटक गए हैं हम।

अहमद : हाँ, जानता हूँ मोहन भाई मगर मेरी धुन को चुप करने वाली गोली अभी पाक मजहब परस्तों के पास नहीं है। हाँ, यों तो पाकिस्तान के पास हथियार हमसे बढ़िया है, फौजें, हमसे ज्यादा है। मगर इनका 'भेजा' तो शेख अब्दुल्ला के गिरवी पड़ा है। जीत हौसले की होती है-जो हमारे पास है।

मोहन : चुप्प! तू भी जोश में आ गया! धीमे बक! चारों ओर दुश्मन फैले हैं और तुझे भाषण सूझ रहा है।

(हिन्दुस्तानी अफसर का प्रवेश दोनों सेल्यूट कर है।)

अफसर : *(आदेश)* मोहन! अहमद! इधर मेरे पास आओ। *(जाते हैं)*...वो देखो। उस पहाड़ी को देखते हो ना?

मोहन : यस सर! वहाँ पाक चौकी है सर! हाँ, केवल चौकी ही नहीं वहाँ गुप्त गोदाम भी है, जहाँ गोला-बारूद का बहुत बड़ा जखीरा रखा तैयार रहता है। यहीं से आसपास की चोकियों को हथियार और रसद सप्लाई होती है।

अहमद : तो सर?

अफसर : हम पाक सरहद में है। वापस अपनी सीमा तक पहुँचना सरल नहीं हैं। क्यों न इस जखीरे को हम बम से उड़ा देवें।

अहदम : एक्सीलेंट आइडिया। मगर हमारे पास न तोपे है न अधिक हथियार। थोड़े से हथगोले जरूर हैं।

अफसर : हथगोले से जब पैंटन तोड़े जा सकते हैं तो यह भी हो सकता है। हम भटके हुए पन्द्रह लोग तो हैं ही।

मोहन : हम तैयार है सर! सिंह तो अकेला पूरे जंगल का राजा होता है-

सिंहा देश-विदेश सम, सिंहा किसा उन्नत
सिंह सको बन संचरे, सो सिंह रो बन्न।

अफसर : शाबाश। एक आइडिया है। पाँच जवान रात को गाँव में जाकर तीस-पैंतीस भेड़ों का इंतजाम करके उनके गलों में लालटेनें, जमाकर लटकाकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहाड़ी के दाहिने ओर से चौकी की तरफ हाँकेगा। अंधेरी रात में दुश्मन समझेगा कि अब इधर से आक्रमण हो रहा है। सभी पाक सैनिक भेड़ों की तरफ दौड़ेंगे। पीछे से बायें हाथ की तरफ से हम खाली चौकी पर हमला कर देंगे। हथगोलों से बारूद में आग लगाने की कोशिश करेंगे। सफल हो गए तो चमत्कार हो जाएगा। चमत्कार।

मोहन : वाह! क्या सूझ है? उन्हीं का बारूद उन्हीं के चिथड़े!

अहमद : वल्लाह! तब तो सुबह उसी चौकी पर तिरंगा लहराकर 'सारे जहाँ से गाऊँगा।'

अफसर : चलो! लग जाओ योजनानुसार काम में।

(अंधेरा, बूटों की खटखट-फुसुफुसाहटें पुनः हल्का लाल प्रकाश होता है, पाक चौकी-दो सैनिक पहरे पर खड़ें हो।)

उस्मान : शफी! शकूर का निकाह हुए यह चौथा महिना ही तो है। आज सितम्बर की तीसरी तारीख है। तीन तारीख को ही इसका निकाह हुआ था। मेरा पड़ौसी है यह।

शफी : उस्मान मियाँ। सैनिक की जिंदगी का क्या? इस पल है दूसरे पल नहीं। ...रेडियो से खबरें नस हो रही होगी, सुन लेवे *(बेग से छोटा रेडियो निकालकर सुनते हैं)*।

उस्मान : *(एक और टकटकी लगाए देखता हुआ)* अरे रे गोली मार रेडियो को। वह देख इतनी मशाले? हिन्दुस्तानी सेनिक अंधेरे में मशालें लेकर आक्रमण करने आ पहुँचे। सावधान...। अब...?

उस्मान : *(दूरबीन लगाकर)*...है। शायद बीसेक मशालें हैं तो पचास-साठ दुश्मन होंगे ही। *(दूरबीन रखकर वायर लेससेट निकालता है।)* हल्लो सर! वन...फोर...सेवन...अलर्ट। हमारी चौकी की दाहिनी ओर से बीस-तीस मशालें लिए साठ के करीब दुश्मन चढ़े आ रहे हैं। क्या? अच्छा। *(दूरबीन रखकर)* हमारे पच्चास सैनिक और है। अभी पहुँच रहे हैं। हुक्म है-इन्हें पहाड़ी पर मत चढ़ने दो नीचे ही तोपों से भून दो।

शफी : *(चीखकर)* तोपों का मुँह उधर कर लो।

ऑफीसर : *(प्रवेश)* आक्रमण कर दो। यहाँ तक मत पहुँचने दो उन्हें यहाँ गोला-बारूद का जखीरा है। आग पकड़ लेगा। उस्मान तुम यहीं रहो। सब आजाओ।

(ऑफीसर निशाना साधे दूसरी ओर दौड़ता है-पीछे से चार-पाँच सैनिक रायफलें ताने दौड़कर आते हैं व ऑफीसर के पीछे भागकर जाते हैं। पीछे से धाँय-धाँय की आवाजें आती हैं। उस्मान चौंककर पीछे देखता है।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

उस्मान : *(मोर्चा लेता है)* अरे पीछे से भी आक्रमण?

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(बम फटता है-साथ ही कई धड़धड़ाम की आवाजें)

नेपथ्य : *(आदेश)* उड़ा दो बारूद के ढेर को। पाक सैनिक तो भेड़ों की तरफ गए है। मूर्ख...। हा...हा...हा...हा।

(फटाकों की लड़ी के छूटने की सी फटाफट धड़धड़ाम की आवाजें।)

उस्मान : बाप रे...! या अल्लाह, हथियारों के गोदाम ने आग पकड़ली, सब स्वाहा हो गया।

(एक घायल पाक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक : शफी, धोखा हुआ है। वे तो सब भेड़ें थी, सैनिक नहीं थे। भेड़ों के गलों में लालटेनें बँधी थी। पीछे से आक्रमण हो गया।

(दोनों भागते हैं। उस्मान व मोहन मोर्टर लिए आते हैं।)

मोहन : *(अट्टाहास)* हा...हा...हा...! सारा ही गोला-बारूद का गोदाम राख हो गया। उड़ गया।

उस्मान : *(जेब से तिरंगा निकालकर)* चमत्कार हो गया। असम्भव सम्भव हो गया। जय हिन्दुस्तान। *(ऊँची जगह झंडा लहराता है)* दोनों सलामी लेते हैं। फिर गाते हैं।

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्ताँ हमारा-हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा।

(पर्दा गिरता है)

2/152, साकेत नगर
ब्यावर, अजमेर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लघु पत्रिका आंदोलन की पीड़ा : ज्ञानरंजन के पत्र

● प्रस्तुति : राजाराम भादू

[यदि गहराई से देखें तो आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (लघु) पत्रिकाओं के माध्यम से ही हुआ है। ब्रिटिश शासन में स्वतंत्रता के स्वर को वहन करने का काम उन पत्र-पत्रिकाओं ने किया जो लेखकों के व्यक्तिगत प्रयत्नों से निकाली जा रही थीं- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमचंद, प्रसाद, यशपाल आदि अनेक रचनाकारों ने इसकी शुरुआत की तथा छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता जैसे आंदोलन लघु-पत्रिकाओं के मंच से ही फले-फूले। माखनलाल चतुर्वेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसे देशभक्तों ने इस परम्परा में सुदृढ़ किया और आजादी मिलने के बाद तो जैसे इस तरह की पत्रिकाएँ केन्द्र में आ गयी। मुझे याद है दिल्ली के टी-हाउस में, जहाँ लेखकों का जमावड़ा एक दैनिक कार्यक्रम था, जिस उत्कंठा में लोग 'धर्मयुग' की प्रतीक्षा करते थे उसी आतुरता से 'लहर' की भी।

छठे दशक में लघु पत्रिकाओं की गतिविधियाँ अपने पूरे शबाब पर थीं। ऐसे में अपने समय के चर्चित कथाकार ज्ञानरंजन ने 'पहल' पत्रिका के सम्पादन द्वारा रचनाकारों की यात्रा की एक नयी राह खोली और धीरे-धीरे उन्होंने 'पहल' को नयी रचना चेतना का केन्द्र बना दिया। केन्द्र ही नहीं ज्ञानजी ने उसे एक आंदोलन में तब्दील कर दिया। 90 अंक निकालने के बाद ज्ञानजी ने 'पहल' बंद कर दी। उन्हें इससे कितनी पीड़ा हुई होगी इसका अंदाजा हम लगा सकते हैं, क्योंकि ज्ञानजी ने तो लघु पत्रिका आंदोलन का सपना देखा था। उन्हीं के प्रयासों से 'लघु पत्रिका राष्ट्रीय समन्वय समिति' भी बनी तथा उसने लघु पत्रिकाओं की भूमिका पर बड़े कार्यक्रम भी किये। सन् 2001 में जयपुर में 'समय माजरा' के बैनर तले लघु पत्रिकाओं का एक विराट और भव्य कार्यक्रम जयपुर में हुआ था। हाल ही में मैं हल्द्वानी गया था तो वहाँ 'आधारशिला' के सम्पादक श्री दिवाकर भट्ट ने उस कार्यक्रम की बड़े सम्मान के साथ याद की। अफसोस कि उसके बाद इस समिति के तत्वावधान में कोई कार्यक्रम नहीं हो सका। जब डॉ. शम्भुनाथ केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा के निदेशक बने तो उन्होंने लघु पत्रिका केन्द्रित दो कार्यक्रम (आगरा तथा दिल्ली में) कराये, जो दुर्भाग्य से संस्थान की जड़ व्यवस्था की भेंट चढ़ गये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

*'पहल' बंद हो गयी और ज्ञानजी अपनी अस्वस्थता के कारण उपराम हो गये। पर इस सबसे न लघु पत्रिका की महत्ता कम हो जाती है न उसके आंदोलन की जरूरत निरस्त। यहाँ हम ज्ञानजी के राजाराम भादू के (जो दिशाबोध, मीमांसा, समय माजरा आदि लघु पत्रिकाओं के सम्पादन तथा अपने रचनाकर्म के माध्यम से लघु पत्रिका आंदोलन से जुड़े रहे हैं) नाम लिखे कुछ पत्र दे रहे हैं ताकि हम ज्ञानजी की पीड़ा को समझ सकें और लघु पत्रिका के आंदोलन की आवश्यकता को महसूस कर सकें। -**हे.भा.**]*

ज्ञानरंजन के पत्र

ज्ञानरंजन के पत्राचार का वितान देश ही नहीं विदेशों में भी वहाँ तक विस्तृत रहा है जहाँ तक उनकी सम्पादित ख्यात पत्रिका 'पहल' की पहुँच रही है। उनकी खतो-किताबत से चंद खुतून मेरे भी हिस्से आये हैं। इनमें से पुराने तो भरतपुर में कहीं रह गये हैं। बाद वाले कुछ पत्र यहाँ सार्वजनिक किये जा रहे हैं।

पता इन्हें छपाना कितना नैतिक है। लेखकों के पत्र एक खास तरह की पब्लिक अपील रखते हैं। उस पर ज्ञान जी का तो पूरा जीवन ही जिस तरह पारदर्शी रहा है, वह उनके पत्रों में पूरी उज्ज्वलता से दिपदिपाता है। मैं तो उन सभी से, जिनके पास ज्ञानजी के पत्र हैं, उन्हें सार्वजनिक कर देने की अपील करना चाहूँगा। इन पत्रों से कथाकार-सम्पादक ज्ञानरंजन जी के व्यक्तित्व का एक नितांत नया और ऐतिहासिक रूप से मूल्यवान पहलू सामने आयेगा। जिनसे उनका पत्राचार रहा है, वे उनसे संवाद की सृजनात्मक ऊष्मा और जबर्दस्त प्रेरणा से वाकिफ हैं। इसी अहसास के चलते मैं इन पत्रों को प्रकाशित कराने की गुस्ताखी कर रहा हूँ। मुझे पूरा भरोसा है कि ज्ञान भैया इसके लिए मुझे माफ कर देंगे।

इन पत्रों में युवा लेखकों-कार्यकर्ताओं के प्रति ज्ञानजी का स्नेह, अंतरंगता और बेबाकी का प्रवाह साफ देखा जा सकता है। एक उदीयमान रचनाकार को औपचारिक प्रोत्साहन की बनिस्पत सच्ची बेबाकी की कहीं ज्यादा जरूरत होती है। जब साहित्यिक-सांस्कृतिक अखबार 'दिशाबोध' दूसरी बार बंद हुआ तो सभी ने औपचारिक अफसोस का इजहार किया। अकेले ज्ञानज़ी ने कहा कि यह अच्छा हुआ, जब तुम दूसरे काम ज्यादा अच्छे से कर सकते हो और यही सच भी था।

इन पत्रों में लघु पत्रिका आंदोलन के उस उभार के संदर्भ हैं, जिसके सूत्रधार ज्ञानरंजन थे। एक समय प्रलेस को एक सांस्कृतिक अभियान में बदलने वाले ज्ञानजी ने लघु पत्रिकाओं के पीछे की उत्प्रेरणा और संभावनाओं का सही आकलन किया था। उन्हें लघु पत्रिकाओं को संगठित और समवेत करने के लिए इस समन्वय की शुरुआत की। एक समय इन प्रयासों ने हिन्दी पट्टी में खासा सांस्कृतिक उद्वेलन और प्रभावी संक्रमण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्पन्न किया था। विडम्बना यह है कि समन्वय किसी तार्किक परिणति तक नहीं पहुँच पाया। इसके पीछे के कारकों का कुछ संकेत यहाँ प्रस्तुत आखिरी पत्र से मिलता है जो उन्होंने 'पहल' के बंद होने के बाद लिखा था। दुर्भाग्य से वे कारण और घनीभूत हो रहे हैं। **-राजाराम भादू**

ज्ञानरंजन
11.05.1993

प्रिय राजाराम भादू,

तुम्हारा पत्र, 'आकृति' का अंक और किताब मिली। 'आकृति' मेरे पास आती है। मैंने वह देख लिया है। तुम्हारी विनम्रता मुझे प्यार से भरती है। नए लोगों में यह विनम्रता कम है। तुम्हारी किताब में कमेंट बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। समझ सही है। पर अक्सर सूझ-बूझ के बाद गहराई में नहीं गये हो, पर अगली किताब या अगले संस्करण में तुम और परिपक्व होकर निकलोगे।

लघु पत्रिकाओं का सम्मेलन सितम्बर में कुरुक्षेत्र में होगा। तब हम इस विषय पर विचार कर सकते हैं कि 'दिशाबोध' को मुख पत्रिका या पत्र बना लिया जाये। तुमको आना होगा।

'पहल' का आगामी अंक बहुत विचारपूर्ण होगा। तैयारी चल रही है। तुम अपनी आग जलाये रखना और अपनी प्रतिभा की धार को बचाना। कविता आलोचना के क्षेत्र में तुमको आगे आना है। अभिवादन सहित।

-ज्ञानरंजन

×××

लघु पत्रिकाओं की राष्ट्रीय समन्वय समिति

101, रामनगर, आधारताल, जबलपुर, फोन : 341393

20 मई, 1993

प्रिय हमसफर,

पिछले दिनों लघु पत्रिकाओं की राष्ट्रीय समन्वय समिति की कार्यकारिणी की एक महत्त्वपूर्ण बैठक रायपुर में सम्पन्न हुई। कलकत्ता सम्मेलन के बाद यह पहली बैठक थी। इसमें 'समकालीन सृजन', 'पल प्रतिपल', 'निष्कर्ष', 'अब', 'कतार', 'पहल' और 'जतन' के सम्पादक उपस्थित हुए। 'दस्तक', 'साम्य' और 'बहुमत' के सम्पादकों के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

साथ 'हस्ताक्षर' के सम्पादक भी आमंत्रित किये गये थे। विजयकांत सम्पादक 'पुरुष', धर्मेन्द्र गुप्त सम्पादक 'विषय-वस्तु' और सुधीर विद्यार्थी सम्पादक 'संदर्श' अपनी अस्वस्थाओं और दूसरी असुविधाओं के कारण नहीं आ सके पर अपने पत्रों में उन्होंने अपनी सहमति सभी निर्णयों के साथ व्यक्त की और भविष्य में अपना सक्रिय सहयोग देने की बात लिखी थी।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बैठक में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गये हैं। कार्यकारिणी ने आगामी सम्मेलन 18-19 सितम्बर में कुरुक्षेत्र में करने की स्वीकृति दे दी है। सम्मेलन के लिए जबर्दस्त प्रस्ताव धनबाद से 'कतार' के सम्पादक प्रो. बृजबिहारी शर्मा और 'जतन' के सम्पादक तारा पांचाल ने कुरुक्षेत्र के लिए किया। विचार विमर्श के बाद सर्वसम्मत सहमति कुरुक्षेत्र के लिए हो गयी। अब सभी लघु पत्रिका सम्पादकों, प्रकाशकों और उससे आंदोलन के रूप में जुड़े लेखकों से हार्दिक अनुरोध है कि वे इस सम्मेलन में अपनी शिरकत करें जिसमें लघु पत्रिकाओं के संघर्ष व उनकी समस्याओं के मुद्दे तो होंगे ही और साम्प्रदायिकता को लेकर ज्यादा समर्थ और जरूरी भूमिका तैयार की जायेगी।

सम्मेलन में प्रगतिशील विचारक और समाजशास्त्री और साहित्यकार असगर अली इंजीनियर को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जा रहा है। आप सबसे निवेदन है कि इस कार्यक्रम के लिए आप अपनी पूरी सक्रियता बना लें और सहयोग करें। इसका प्रचार-प्रसार करें और अपनी पत्रिका के अंकों में इसका विज्ञापन करें। इसका एक प्रारूप साथ में संलग्न है।

सम्मेलन का कार्यालय नीचे के पते पर रहेगा-

तारा पांचाल

सम्पादक/जतन

प्रोफेसर कॉलोनी, बाईपास रोड, कुरुक्षेत्र

इसके अलावा इस कार्यालय और कलकत्ते में 'समकालीन सृजन' के कार्यालय से भी आप सम्पर्क कर सकते हैं।

आप सबसे निवेदन है कि अगले बुलेटिन के लिए 'अब' के सम्पादक शंकर से सम्पर्क करें। उनका पता है-क्वार्टर नं. 158, सड़क नं.-5, सोनाटी बेस्ट लेआउट, जमशेदपुर। दूसरे बुलेटिन का नियोजन 'अब' के सम्पादकों ने स्वीकार किया है। इस बुलेटिन को जुलाई तक निकल जाना है। कृपया आप अपनी पत्रिका के विक्रेताओं की सूची शंकर को भेजें ताकि एक बड़ी और समग्र सूची का निर्माण सभी के लिए किया जा सके। इसे सर्वोच्च प्राथमिकता दें यह आग्रह है। इस दूसरे बुलेटिन को ज्यादा उपयोगी बनाने का आग्रह और प्रयास हमारा है। लघु पत्रिकाओं के सितम्बर सम्मेलन को देखते हुए आपसे आग्रह है कि अगर सुविधा बन सके तो उस समय अपनी पत्रिका का अंक प्रकाशित करें। सम्मेलन में लघु पत्रिकाओं की बिक्री का केन्द्र बनाया जायेगा। साम्प्रदायिकता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर निकलने वाले अंकों को उस समय जारी करना समीचीन होगा। अन्य सभी अंकों का स्वागत है। लघु पत्रिकाओं पर भी कुछ अंक प्रस्तावित हैं। वे भी इस समय जारी हों यह बेहतर है। कृपया इन संभावित अंकों की सूचना कुरुक्षेत्र के पते पर भेजें।

सितम्बर सम्मेलन के अवसर पर पोस्टरों, नुक्कड़ नाटकों का प्रदर्शन भी व्यापक स्तर पर किया जायेगा। कार्यकारिणी के चार रिक्त स्थानों की पूर्ति करते हुए सर्वसम्मति से 'परिवेश' के सम्पादक मूलचंद गौतम, 'अलाव' के सम्पादक रामकुमार कृषक, 'साम्य' के सम्पादक विजय गुप्त और 'दिशाबोध' के सम्पादक राजाराम भादू का नाम चुना है।

सभी लघु पत्रिकाओं से सर्वोत्तम वैचारिक रचनाओं को संकलित करके एक संकलन हर वर्ष निकालने की एक योजना स्वीकार कर ली गयी है। इस पर 1994 से अमल प्रारम्भ होगा।

आप सबसे हार्दिक आग्रह है कि लघु पत्रिका आंदोलन के विस्तार के लिए और सितम्बर अधिवेशन के लिए अपने सुझाव देते रहें और इसके संबंध में स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में अपनी टिप्पणी और लेख भेजते रहें। सम्मेलन का समाचार अपने प्रयास से सभी अखबारों, पत्रिकाओं आदि में देने का प्रयास करें। हमने यूनीवार्ता से समाचार रिलीज किया है।

अंत में मेरा आग्रह है कि हिमाचल, पंजाब, दिल्ली और हरियाणा के साहित्यिक मित्रों और साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादकों का दायित्व सितम्बर सम्मेलन के लिए काफी ज्यादा है। इसलिए एकजुट होकर परस्परता के साथ और छोटी भूलों को विस्मृत करके अपने बड़े लक्ष्यों के लिए आगे आएँ। अभिवादन सहित।

–ज्ञानरंजन

×××

लघु पत्रिकाओं की राष्ट्रीय समन्वय समिति

101, रामनगर, आधारताल, जबलपुर, फोन : 341393

26.02.1994

काफी समय के बाद हम आपसे सम्पर्क कर पा रहे हैं। कुरुक्षेत्र में होने वाले राष्ट्रीय सम्मेलन के स्थगित हो जाने के बाद हम सबको काफी निराशा हुई थी। लेकिन वह एक गहरी विवशता थी। बहुत से लोगों ने यह महसूस किया था कि प्रतिगामी शक्तियों का भी इसमें हाथ है पर यह सब हरियाणा में प्राकृतिक आपदा और समय पर तैयारी न हो सकने के ही कारण था। तभी से हम प्रयास में थे कि सम्मेलन का आयोजन जल्दी ही अन्यत्र किया जा सके। जयपुर में हमारे कई साथियों ने इस संबंध में अपने प्रस्ताव भेजे थे,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लेकिन उसके पहले ही जमशेदपुर में इस सम्मेलन के आयोजन का ठोस प्रस्ताव आया है।

आपको सूचित करते हुए हमें गहरी तसल्ली है कि जमशेदपुर में आगामी 14-15 मई को यह लघु पत्रिका सम्मेलन होगा। आयोजकों ने व्यापक चर्चाओं और सहमति के बाद इस काम को अंजाम दिया है। सभी संगठन, रंगकर्मी, आदिवासी संगठन, श्रमिक संघ और साहित्यिक संस्थाओं ने मिलजुलकर इस आयोजन की सार्थकता के लिए एकमत सम्मेलन का प्रस्ताव किया है। 'दस्तक' पत्रिका का समूचा परिवार और उसके सम्पादक राघव आलोक के साथ 'अब' पत्रिका के सम्पादक शंकर के अलावा इस सम्मेलन को बिहार की सभी साहित्यिक, सांस्कृतिक पत्रिकाओं के सहयोग से संचालित किया जायेगा। स्वागत समिति बन रही है और सक्रिय कार्यकर्ता इस दिशा में अपनी भागीदारी प्रारम्भ कर चुके हैं। विदित हो कि वर्ष 1993 में बिहार से निकलने वाली लघु पत्रिकाओं ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह प्रभावशाली अंकों को निकालकर किया है।

यह समय जिसमें कि एक तरफ तो लघु पत्रिकाओं के अलावा रचना संसार में कोई किरण दिखती नहीं और दूसरी तरफ जबकि लघु पत्रिकाओं पर आक्रमण हो रहे हैं, हमको अपनी बेहतर सृजनात्मक ताकत दिखाने की जरूरत है। इस सम्मेलन का अधिकाधिक प्रसार करें और बड़े पैमान पर साथी एकत्र हों, यह हम सबका प्रयास होना है। अपने इलाकों में सम्मेलन की तारीखों और उसके उद्देश्यों का प्रचार-प्रसार हर तरह से करें।

सम्मेलन में साम्प्रदायिकता से मुठभेड़ की नयी चुनौतियाँ, साम्प्रदायिकता विरोधी संग्राम और लघु पत्रिकाएँ तथा लघु पत्रिकाओं की चिंताएँ जैसे विषयों पर सघन चर्चा होगी और लघु पत्रिकाओं के कला विधान और पठनीयता पर भी बातचीत होगी। कृपया अपना सुझाव, मशविरा, सहयोग और संदेश नीचे के पते पर भेजें-

राघव आलोक
सम्पादक/दस्तक,
साराजहाँ-मुसहारा के बगल में, मकदमपुर, जमशेदपुर-831002
अभिवादन सहित।

आपका
ज्ञानरंजन

×××

ज्ञानरंजन
28.04.1994

प्रिय राजाराम,

तुम्हारा कार्ड मिला। दो-तीन दिन पहले किताब मिली। यह किताब उत्पादन की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
दृष्टि से अच्छी नहीं है। इस पर ध्यान देना था। पहली किताब बहुत अच्छी बनी थी। बहरहाल, जमशेदपुर जरूर पहुँचना। मेरी तबियत बहुत खराब थी। बीच में पाँच दिन अस्पताल रहा और अभी भी ठीक नहीं हूँ। इस बीच बेटे के विवाह के कारण बहुत दबाव और थकान हो गयी है।

लगता है कि काम की प्रबलता अब शरीर सह नहीं पा रहा है।

तुम सबको आगे बढ़ना चाहिए। हमारी निरंतरता हमारा धारा प्रवाह विचारधारा के प्रति समर्पण आज पहले से ज्यादा बहुमूल्य है। मैं 'पहल' के 50वें अंक क़ो अद्वितीय बनाने का स्वप्न देख रहा हूँ।

सस्नेह।

तुम्हारा
ज्ञानरंजन

×××

21.04.1995

प्रिय राजाराम,

तुम्हारा कार्ड मिला। 'कविता के संदर्भ' की ही जरूरत है।

क्या 'दिशाबोध' को अंतिम तौर पर बंद किया है।

तुम्हें लघु पत्रिकाओं की राष्ट्रीय समन्वय समिति की बैठक में कार्यकारिणी का सदस्य मनोनीत किया गया है। सूचनार्थ।

पत्र देना।

तुम्हारा
ज्ञानरंजन

×××

ज्ञानरंजन
13.09.1999

प्रिय राजाराम, अभिवादन।

'दिशाबोध' का ताजा अंक मिला, जो भव्य और उपयोगी समाचारों-टिप्पणियों से भरा हुआ है। अशोक (शास्त्री) के लेख पर मेरी अनेक सहमतियाँ हैं और असहमतियाँ भी। इस बारे में कुछ अधिक उत्साह दिखाया जा रहा है। मुझे 'दिशाबोध' का पहला अंक नहीं मिला।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कृपया 'दिशाबोध' में प्रकाशित करवाओ: भाऊ समर्थ। पहल का 99 का व्याख्यान विख्यात सिनेमा निर्माता मृणाल सेन 23 अप्रैल को दिल्ली में देंगे।

सस्नेह।

ज्ञानरंजन

×××

18.03.2000

प्रिय राजाराम भादू
अभिवादन।

विश्वास है स्वस्थ प्रसन्न होंगे। 'माजरा' में तुम्हारे लेख को पढ़कर मैंने प्रेमचंद गांधी को तुम्हारे पते के लिए लिखा पर उनका जवाब आज तक नहीं आया, तब तक 'साक्षात्कार' में तुम्हारा पता मिल गया।

'पहल' ने अब तक ज्ञानेन्द्रपति, विष्णु खरे, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, वेणु गोपाल, अरुण कमल के लम्बे साक्षात्कार प्रकाशित किए हैं। हां, लीलाधर मंडलोई का भी।

हम चाहते हैं कि तुम ऋतुराज का एक लम्बा साक्षात्कार लो। यह हमारा शिड्यूल है काफी समय से पर ऋतुराज दो बार बाहर चले गये और हमारा प्रसंग रह गया। हमारे पास 3 महीने का कुल वक्त है।

कृपया हमारे प्रस्ताव पर अपनी राय तत्काल दें।

तुम्हारा
ज्ञानरंजन

×××

16.05.2000

प्रिय राजाराम,

तुम्हारा पत्र जब लम्बे समय तक नहीं मिला तो मैं अवसादग्रस्त हो गया। अब फिर अच्छा लग रहा है। 'दिशाबोध' का बंद होना ठीक रहा, क्योंकि 'विमर्श' (शिक्षा केन्द्रित पत्रिका) का काम और नये ग्रंथों का लेखन (राजकमल के लिए जैसे) उस अवस्था में पता नहीं हो पाता कि नहीं। मैं बहुत खुश हूँ कि तुम ठोस रूप में सक्रिय हो-आधारभूत काम कर रहे हो। तुम्हें आज बहुत ग्रो किया हुआ देखकर मेरा चित्त प्रसन्न है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऋतुराज का साक्षात्कार मुक्त होकर लेना, हमारी तरफ से बंदिश नहीं है। किसी भी प्रकार की। मुझे बेसब्री से इंतजार रहेगा, तुम्हारे काम का। 'पहल' का अंक मार्क्सवादी आलोचना (64-65) 4 जून को पहल सम्मान के समय देहरादून में रिलीज होगा। साक्षात्कार जीवंत भी हो और वह आकार में लचीला हो।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

ज्ञानरंजन

×××

ज्ञानरंजन
25.07.2000

प्रिय राजाराम, अभिवादन,

तुम्हारा साफ, समझदार और काम को आगे बढ़ाने वाला महत्त्वपूर्ण पत्र मिला। इस बीच वेदव्यास, हेतुजी और शंभुनाथ जी के पत्र विस्तार से मिले। मैं अपने मशविरे पर कायम हूँ। वेदव्यास को मैंने समझाते हुए पत्र लिखा है। उन्होंने दो साल पहले, फिर एक साल पहले मेरे पास प्रस्ताव करके अपनी मंशा जाहिर की थी पर मैं जानता हूँ कि उनके पास आधार कितना है, प्रेरणा कितनी है और उनका दिल कितना बड़ा है। यह आयोजन प्रलेसं और जलेसं के बैनर पर नहीं होना है। इसमें सहयोग जाहिर है सबका रहेगा। राजस्थान की प्रमुख पत्रिकाओं को जयपुर की हमराह सांस्कृतिक संस्थाओं को सहयोगी रूप में शामिल करना है। तुमको अधिक कुछ लिखने की जरूरत मुझे इसलिए नहीं है कि भीतर-बाहर हर स्थिति से तुम वाकिफ हो, गुजरे हो। तुम उस शैली को समझते हो जिससे बड़ा फलक बनता है। देहरादून आये साथी सब हमराही हैं। समझदार हैं।

आधार तैयारी प्रारंभ करो। तारीख की दिक्कतें हैं। मेरी बेटी का विवाह दिल्ली में होना है 10 दिसम्बर को। गिरती सेहत और आर्थिक संबंधी ठेस के कारण मेरी कार्यक्षमता घटी है। मैं बहुत मंद गति से अब काम कर पाता हूँ। नवम्बर से मेरा शिकंजा अधिक कसेगा। अक्टूबर अंत में या फरवरी 2001 में यह आयोजन हो सकता है। मेरी इच्छा है कि यह बहुत विशाल रूप में और आक्रामक रूप में हो। सुस्ती, अवसाद, जड़ता और बौद्धिक मंदी के विरुद्ध पूरे हिन्दी हार्टलैण्ड में इसके संदेश जायें और यह सब किया जा सकता है। शंभुनाथ जी जल्दी में चाहते हैं कि यह काम हो जाये। बहरहाल मैं सितम्बर में कभी आ सकता हूँ, दो दिन बैठकर अलग-अलग बातें होंगी, पर मुख्य बात यह है कि हम समय को पहचानें और जिनमें कुछ इगो है वह न रहे, सिवाय हमारे अपने लक्ष्य के। हम सब कार्यकर्ता की तरह इसमें डूबकर वास्तविक कामरेड की तरह काम करें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे रिश्ते बनें, विवाद टलें और सम्मेलन के बाद खिलें यह चिंता हम सबकी है। जयपुर के साथियों पर मेरा भरोसा था तभी मैंने जयपुर के लिए पहला प्रस्ताव किया।

मैं किससे-किससे वार्तालाप करूँ आप सब बतायें। आप हेतु जी को इस पत्र के आधार पर मेरा मंतव्य बता दें। वे कर्मठ और समर्पित व्यक्ति हैं। आप सबके साथ मैं हमकदम हूँ।

ज्ञानरंजन

×××

23.06.2010

प्रिय राजाराम,
अभिवादन।

मैं लगभग बीस दिन दूर की यात्राओं के बाद लौटा तो तुम्हारा 30 मई का कार्ड मिला। तुमसे मेरा आत्मीय सम्पर्क-रिश्ता पुराना होता जा रहा है। तुमने इसे बनाएँ भी रखा है, जबकि मैं अपनी आवारगी में कई बार इसे भूलता हूँ। तुमसे एकाध बार मिलने और बातें करने की इच्छा भी हुई। कई बार जयपुर का कार्यक्रम बना, टिकिट भी हुई, लेकिन कामयाब नहीं हो सका।

74 से 75 की तरफ बढ़ रहा हूँ, सेहत कमजोर है, दवाइयों के बल पर चलता हूँ लेकिन यात्राएँ काफी करता हूँ। आमतौर पर मित्रों के पास जाता हूँ। तुम्हारे काम, तुम्हारे लेखन को नजरअंदाज कभी नहीं किया, जहाँ भी दिखता है, पढ़ता हूँ। राजस्थान की कम जानकारी है पर हमारे इलाके में सांस्कृतिक उत्साह काफी पस्त है। पस्ता हालात का उतना रंज नहीं है जितना कि सांस्कृतिक भ्रष्टाचार का। दौलत की हवस विचारों का मखौल उड़ा रही है। कभी मिलेंगे तो दिल की बातें होंगी।

तुम्हें कभी-कभी अपना हाल देते रहना।

सस्नेह।

ज्ञानरंजन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य में माफिया विमर्श

● विधि विग्रह

भ्रष्टाचार निरोधक दस्ते के दो सिपाहियों ने आई.टी.ओ. पुल पर घूमते हुए (संदिग्धावस्था में) सुकान्त जी को पकड़ लिया। वे सुकान्तजी को अपने कार्यालय में पूछताछ के लिए ले आये और उन्हें अफसर के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। अफसर ने सुकान्त जी को अच्छी तरह देखा और देखा कि सुकान्त जी के कंधे पर एक झोला लटक रहा है। अफसर ने कड़क आवाज में पूछा-"इस झोले में क्या है?" सुकान्त जी डरकर गिरने को हुए कि सिपाही ने उन्हें थाम लिया। सुकान्त हकलाते हुए बोले, "सर मैं कोई चोर-उचक्का नहीं हूँ। मैं तो अदना सा लेखक हूँ। मेरे झोले में कुछ नहीं है।"

अफसर को सुकान्त जी पर दया आयी और उन्होंने उन्हें कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। सुकान्त जी ने कुर्सी पर बैठते हुए अपने माथे का पसीना पोंछा और कहा-"थैंक्यू सर, अब आप बतायें कि एक लेखक क्या भ्रष्टाचार कर सकता है?"

"यह आप कैसे कह सकते हैं? साहित्य में आजकल माफियाओं का बहुत जोर है। हमारे रिकार्ड में कई माफिया गुटों के नाम दर्ज हो चुके हैं। लाइए, अपना यह झोला मुझे दीजिए" अफसर ने झोला लेने के लिए हाथ बढ़ाया।

"सर इस झोले में कुछ नहीं है" और वे झोले को उसी तरह काख में छिपाने लगे जैसे कृष्ण के समक्ष सुदामा ने चावलों की पोटली छिपाई होगी। पास खड़े एक सिपाही ने कृष्ण की तरह ही सुकान्त से झोला छीन लिया और अफसर को दे दिया। सुकान्त बार-बार "अजी सर, अजी सर" करते रह गये।

अफसर ने झोला मेज पर उलटा दिया। मेज पर कुछ चने बिखर गये और एक केला अलग जा पड़ा। सुकान्त जी को अपने ऊपर ही दया आने लगी। वे गिड़गिड़ाकर बोले-"सर क्यों एक लेखक को बेइज्जत कर रहे हैं? आपको इसमें कुछ नहीं मिलेगा।"

"ये चने कहाँ से आये और ये केला?"

"सर मैंने ये अपने कलेवा के लिए खरीदे थे। आई.टी.ओ. पुल पर खड़ा खा रहा था कि इन लोगों ने पकड़ लिया और आपके पास ले आये। मैंने केला और बचे चने झोले में डाल दिये।" पर अफसर को विश्वास नहीं हुआ और उसने झोले से निकले कागजों को उलट-पलट कर देखा। उनमें एक अधफटा पन्ना उसने अलग किया और उसे पढ़ने लगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
''बताओ तुम किस माफिया गुट के लिए काम करते हो? और 1965 के नवम्बर की 'सारिका' का यह आधा पन्ना क्यों छिपाये घूम रहे हो।'' अफसर ने पूछा।

''कौन, कौनसा पन्ना सर, जरा मुझे दिखायें'' सुकान्त हकलाते हुए बोले।

''तुम्हें यह पन्ना नहीं दूँगा, यही तो हमारे काम का है। तुम्हें दे दूँ तो तुम इसे चबाकर सटक जाओगे। बताओ यह पन्ना तुम किसके पास ले जा रहे थे?''

''सर ये...ये पन्ना तो यूँ ही मेरे इस झोले में आ गया था।''

''नहीं यूँ ही यह पन्ना नहीं आया तुम्हारे थैले में। इसका आधा हिस्सा किसके पास है, जल्दी बताओ।'' अफसर की आवाज कठोर होती जा रही थी। सुकान्त जी घबरा गये। वे कुछ सफाई देते इससे पहले ही अफसर ने कड़क कर कहा–''बताते हो या थर्ड-डिग्री का इस्तेमाल करूँ ?''

सुकान्त जी काँपने लगे और हाथ जोड़कर बोले–''सर मैं कालिदास माफिया गुट के लिए काम करता हूं। यह पन्ना मैं गाजियाबाद में रह रहे गुट के एक सदस्य के पास ले जा रहा था। उसके पास ही इस पन्ने का शेष आधा भाग है। हम दोनों पन्नों का मिलान कर आगे की योजना बनाते। पर...''

''पर पकड़े गये यही न। आजकल तुम लोगों ने चारों ओर त्राहि-त्राहि मचा रखी है। कल शूद्रक गुट का आदमी एक पूरी पाण्डुलिपि के साथ पकड़ा गया था। पता है उस पाण्डुलिपि में क्या था?''

''क्या था सर?'' सुकान्त जी ने गिड़गिड़ाते हुए पूछा।

''कालिदास माफिया गुट की गतिविधियों का कच्चा चिट्ठा था, किसे इस साल अकादमी पुरस्कार दिलाना है? किसे ज्ञानपीठ तो किसे सरस्वती सम्मान? यह भी उसमें दर्ज था कि किससे कितना कमीशन लिया जाएगा? किसे किस पद पर आसीन किया जाएगा और किसे पदच्युत करने का भरसक प्रयास किया जाएगा? समझे।''

''जी सर समझ गया। पर ये घटिया काम हम कालिदास गुट के लोग नहीं करते। हम लोग कला, साहित्य और संस्कृति के पुजारी हैं। ये सारे घटिया काम ये शूद्रक माफिया वाले करते हैं। कहने को वे अपने आपको आम जन का हिमायती कहते हैं पर सारी तिकड़में अपने लिए करते रहते हैं। इसमें आपस में भी काफी खींचतान है।''

''तो कला का पुजारी तुम्हारा गुट दूध का धोया है? बताओ सारिका के इस पन्ने को मिलाकर क्या षड्यंत्र करने वाले थे?''

''सर, हमारी योजना तो एक नयी बहस चलाने की थी, जिसके सूत्र सारिका के इस पन्ने से खोजने थे। अब हम लोग तो सारस्वत बहसों में विश्वास करते हैं। हमारी योजना यह थी कि 'हिन्दी साहित्य में माफिया विमर्श' पर बहस चलायी जाए। दलित, नारी और आदिवासी जैसे विमर्श तो पिट गये। ये पिटे भी इनके अपने सूत्रधारों के कारण। पर आज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
तक हमारी कोई योजना विफल नहीं हुई क्योंकि हम केवल ज्ञान की बातें करते हैं, जीवन की नहीं। हम ईश्वरवादी तो नहीं हैं पर आध्यात्मिक जरूर हैं।''

''अच्छा बताओ, माफिया विमर्श पर आप किन-किन बिन्दुओं पर बहस करेंगे?''

''मैं यह कैसे बता सकता हूँ। हमें तो सारिका के पन्ने से बहस के सूत्र खोजकर डॉन को देने हैं। वे ही आगे का कार्यक्रम तय करेंगे। अब तो आपने इसे बीच में ही गपक लिया।''

''अगर तुम्हें छोड़ दें तो हमारा क्या भला करोगे?''

''सर, अगर आप कविता-कहानी लिखते हों तो उन्हें छपवाने की व्यवस्था मैं कर दूँगा। अगर आपकी कोई किताब छप चुकी है तो उसकी एक प्रति मुझे दे दें। उसकी समीक्षाएँ कई पत्रिकाओं में निकलवा दूँगा। आप चाहें तो आपका इंटरव्यू ले लूँ। उसे मैं कवर स्टोरी के रूप में छपवा दूंगा। आपको हम युगप्रवर्तक लेखक भी सिद्ध कर सकते हैं।''

''अबे ये क्या बकवास कर रहा है, मेरी समझ में कुछ नहीं आया? यह बता कि तेरे पास कुछ मुद्रा भी है कि नहीं?''

''कहिए किसकी मुद्रा बनाऊँ? वीर की या लाचार की, याचक की या सरदार की, नाव की या पतवार की, शरीफ की या मक्कार की, शैथिल्य की या रफ्तार की, सड़क की या कारागार की, रिक्तता की या भण्डार की...।''

''अबे चुपकर...चुप, अबे किस घोंचू को पकड़ लाये। ले जाओ इसे और आई.टी.ओ. पुल पर छोड़ आओ। जा बे साले तेरी छुट्टी करले माफिया विमर्श जा...।''

सिपाहियों ने सुकान्त को उठाया और दफ्तर से बाहर ले आयो। सुकान्त ने पीछे मुड़कर देखा कि अफसर मेज पर बिखरे चने बीनकर फांक रहा था।

छावनी, नीमकाथाना-332713
राजस्थान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अव्यवस्थित बदलाव की आलोचना

• नंद चतुर्वेदी

'मूल्य-संक्रमण के दौर में पुस्तक' डॉ. सदाशिव के लेखों का संग्रह है। पुस्तक में हमारी ज़िन्दगी के त्वरित बदलावों से सम्बन्धित उन्नीस लेख हैं। वे एक दशक पहले लिखे गये है, जिनमें से अधिकांश 'राजस्थान पत्रिका' के 'रविवारीय परिशिष्ट' में छपे। तब उसके प्रभारी वरिष्ठ साहित्यकार मनोहर प्रभाकर थे।

कुछ समय पहले डॉ. सदाशिव ने बहुत आग्रह के बाद इन्हें मुझे पढ़ने के लिए दिये थे, जिन्हें एक साथ पढ़ कर मैं नागरिकों और प्रबुद्धजनों की अपनी और समाज की जिन्दगी में व्यापक उलट-फेर के प्रति उदासीनता और उपेक्षा देखकर सहम गया। मैंने चाहा कि लेखक की इन चिन्ताओं के साथ नागरिक समाज की सहभागिता हो। मैं प्रसन्न हूँ कि डॉ. सदाशिव के वे आलेख पुस्तकाकार होकर आ गये हैं। एक कवि, शिक्षक, संस्कृति-कर्मी, लेखक की इन चिन्ताओं को हमें सहृदयता और सौन्दर्य-बोध का विस्तार देने के रूप में ही पढ़ना चाहिए।

लेखक की ये चिन्तायें क्या है? भूमिका में उनके बारे में कुछ खुलासा है। लिखा है 'लोगों की आत्म-केन्द्रियता में निरन्तर वृद्धि ने सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया। मैंने देखा कि देश, संस्था, परिवार, नगर, समाज, प्रकृति, पर्यावरण आदि किसी भी कीमत पर अपनी ही प्रगति अब अधिकाधिक लोगों की लक्ष्य बनती जा रही है। उपभोक्ता संस्कृति के प्रचार-प्रसार ने अधिकाधिक वस्तुओं के उपभोग को ही श्रेष्ठता का मापदंड बना दिया है। इसलिए मितव्ययिता, सादगी, त्याग आदि अवधारणायें अब लोगों की समझ से बाहर होने लगी हैं। शिक्षित होने का अर्थ अब बेहतर इन्सान बनना न हो कर अधिक पैसा कमाने में समर्थ होना रह गया है। समाज में भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता अधिक ग्राह्म होने लगी है। हमारे पारम्परिक मूल्यों का यह संक्रमण ही मेरे अधिकांश लेखों की पृष्ठभूमि है।'

डॉ. सदाशिव के इन विवेकपूर्ण विचारों के साथ पाठकों को इस तथ्य से सहमत होने में भी संकोच नहीं होगा कि परिवर्तन की जिस तेज आँधी में हम फँस गये हैं उसने हमारे निर्णय, हमारे चुनाव, हमारे मूल्य बोध, हमारी रुचि-अरुचि के लिए कोई जगह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं छोड़ी है। परिवर्तन के जिस मॉडल को हमने चुना है वह पश्चिम का करूणारहित आर्थिक व्यक्तिवाद है, जिसे सदाशिव ने अच्छी तरह लक्षित किया है और 'आत्म केन्द्रीयता' कहाँ है। लेखक बार-बार अपने आलेखों में 'आत्म केन्द्रीयता' की वृद्धि की ओर इशारा करते हैं जिसके बीज या तो सामन्ती संस्कृति में है या पूंजीवादी संस्कृति में लेकिन जिसका विश्लेषण उन्होंने नहीं किया है। ऐसे कई आलेख हैं जो भिन्न-भिन्न सामाजिक स्थितियों, प्रसंगों, विषयों पर हैं जिनकी तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता। उदाहरण के लिए अठारवें आलेख-'पुत्रो न स्तोतव्य' को देखें। भारतीय संस्कृति में आत्म-प्रशंसा की सारी चेष्टाओं को निंदनीय माना है। सदाशिव ने परिवारों में वेग से फैलते हुए इस दुर्गुण को लक्षित किया है। उन्होंने अपने इस आलेख में पुत्र की प्रशंसा के बहाने 'आत्म प्रशंसा' की निन्दा की की है साथ ही यह परामर्श भी दिया है कि उत्साह-वर्धन के लिए करी जाने वाली प्रशंसा को अतिशयोक्तियों से बचाया जाये।

प्रशंसा करने और सुनने के इस सहज लालच के कारण 'आलोचक समाज' न बन पाने का वाजिब डर लेखक रेखांकित करते हैं, जबकि कबीर ने कभी कहा था 'निंदक नियरै राखियै'।

अपने गृह-नगर श्रीनाथद्वारा की छिन्न-छिन्न होती आस्थाओं और बढ़ती व्यवसायोन्मुखिता और अस्वच्छता पर गहन चिन्ता तथा विकलता से लिखे दो आलेख, 'बाजार में बदलता एक वैष्णव तीर्थ', 'पावन नगरी: अपावन गलियाँ' पठनीय हैं। दोनों लेखों में लेखक ने इस भक्ति-नगर के सांस्कृतिक-प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपभोक्ता-संस्कृति के चारों तरफ से होने वाले आक्रमण का त्रासद वर्णन किया है। इसी प्रकार नष्ट होती शुचिता और स्वच्छता के लिए लापरवाह नागरिकों को कर्त्तव्यबोध कराया है।

'पावन नगरी: अपावन गलियाँ' शीर्षक लेख का सख्त शब्दों में अन्त होता है ''इस नगर के निवासियों को, मंदिर मंडल को, यहाँ कार्यरत संस्थों को, और राज्य सरकार को श्रीनाथजी के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के प्रथम उपाय रूप में इस नगर को स्वच्छ व सुंदर बनाने का हर संभव उपाय करना चाहिये। जब तक लोगों में श्रीनाथ मंदिर के विस्तार स्वरूप इस नगर को साफ-सथुरा और पवित्र बनाए रखने की इच्छा जागृत नहीं होती तब तक उन्हें शायद सच्चे अर्थों में वैष्णव नहीं कहा जा सकता''।

सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन बदलने में शिक्षा और भाषा कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती है इससे 'मूल्य संक्रमण के दौर में' के लेखक सुपरिचित हैं। आजादी के दिनों में मेकॉले की शिक्षा-पद्धति और भाषा व्यवहार की हमारे राजनेताओं ने उग्र आलोचना की है। गाँधी-विचार में अंग्रेजी शिक्षा और भाषा बदलाव का जबरदस्त आग्रह रेखांकित है। उन्हीं चिन्ताओं और इधर के शिक्षा संस्थानों के अनियंत्रित विस्तार और व्यावसायीकरण को लेकर सदाशिव ने चार लेख लिखे हैं। चारों लेखों में शिक्षा के मूल लक्ष्यों के विलुप्त हो जाने का अफसोस और फिक्र है। जिस तथ्य से लेखक सबसे अधिक डरे हुए हैं वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिक्षा की विसंगतियाँ' लेख में लिखा है : ''जब तक हमारी आवश्यकताओं एवं हमारी परिस्थितियों के अनुकूल उच्च शिक्षा का सुनियोजित विस्तार नहीं होता तब तक हमारे अधिकांश कॉलेज सार्वजनिक धन के अपव्यय के साधनों के अलावा कुछ नहीं बन पायेंगे। वे भारी पूंजीवादी-निवेश के बावजूद श्रेष्ठ एवं देश के गौरव बढ़ाने वाले व्यक्तियों का निर्माण नहीं कर पायेगे।''

हिन्दी भाषा के बहुविवादित प्रश्न पर लेखक न तो उग्र होते हैं, न उत्तेजित बल्कि एक धीर-मति विद्वान की तरह वे उसे अधिसंख्य देशवासियों द्वारा बोली-समझी जाने वाली भाषा के रूप में लक्षित करते हैं। 'राष्ट्र-भाषा का प्रश्न' वाले लेख में उन्होंने अंग्रेजी की तुलना उस 'अप्राकृतिक पेड़' से की है 'जिसकी जड़े इस देश के बाहर हैं। 'इसकी उपस्थिति हर उस भाषा-वृक्ष के विकास में बाधक है जो जीवंत रूप में इसी देश से जुड़ा और इसी देश की जलवायु की उपज है।'

सदाशिव भाषा के साथ प्रगाढ़ भावनात्मक रिश्ते की बात करते हैं जिसे इधर संवेदनाहीन व्यापारवाद के वैचारिक-विर्मश में नजरन्दाज किया जाने लगा है। उन्होंने लिखा किसी भाषा और उसके बोलने वालों के बीच सम्बन्ध शरीर और वस्त्र का न होकर शरीर त्वचा का होता है। भाषायें कमीज़ नही है जिनमें से एक को उतार कर आसानी से दूसरी पहनी जा सके। भाषा अभिन्न रूप से उसे बोलने वालों के समूचे इतिहास तथा उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषाताओं से जुड़ी रहती है इसलिए किसी देश का काम कभी पूरी तरह किसी विदेशी भाषा से नहीं चल सकता।'' (राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा हिन्दी)

पुस्तक का सबसे लम्बा और केन्द्रीय आलेख बढ़ती 'आत्मकेन्द्रिता और हमारा समाज' है। लेखक ने आत्मकेन्द्रितता का अर्थ बताते हुए उसे 'व्यक्ति में उदात्त भाव और मानव मात्र के प्रति व्यापक संवेदनशीलता का अभाव' कहा है। ऐसा व्यक्ति 'अपने लिए एक ऊर्ध्वगामी व भविष्योन्मुख जीवन के स्थान पर अल्पकालिक ह्रासोन्मुख जीवन का चुनाव करता है।''

आत्म-केन्द्रितता के कारणों पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है ''हमें लगता है कि हमारा समाज अचानक एक विश्वव्यापी उपभोक्ता संस्कृति की गिरफ्त में आकर अपनी उस सांस्कृतिक परम्परा से कट गया है जो त्याग, सादगी, परार्थ और कर्त्तव्यपरायणता पर अत्यधिक बल देती थी।'' इस कारण के अतिरिक्त भोगवादी दृष्टि, अर्थ-केन्द्रित सामाजिक-रचना, परिवारों का विघटन, पारिवारिक रिश्तों की टूटन, व्यक्ति स्वार्थ की सर्वोपरिता, जनसंख्या वृद्धि और राजनीति की वर्तमान भूमिका को आत्म-केन्द्रितता बढ़ाने के कारणों में गिनाया है।

समाज-रचना के स्थायी उपकरणों में लेखक मानते हैं कि 'श्रेष्ठ समाज वही हो सकता है जिसमें उदारता व सार्वजनिक हित के मूल्य प्रतिष्ठित हों'। यह निश्चित है कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
उदात्त जीवन मूल्य ही समाज को बचा सकते हैं लेकिन एक सुविधा और अघाये हुए विभाजित समाज में श्रेष्ठ, उदार जीवन मूल्यों को बचाने का काम कितना दुष्कर और लगभग असंभव है इसका उदाहरण भारतीय समाज है जहाँ संचय की अकल्पित तृष्णा पैदा हो गयी है और श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों का तिरस्कार सहज स्वीकृति पा गया है। आत्म-केन्द्रिता के कारण ढूंढने में डॉ. सदाशिव थोड़े और गहरे पानी में उतर सकते थे।

'मूल्य-संक्रमण के दौर में' का अंतिम और भाव-प्रवण लेख है 'अब कहाँ वह प्रेम की रंगत'। यह लेख सदाशिव घायल लैला के कथन से शुरू क़रते हैं जिसे निज़ामी अंतिम क्षणों में मजनू के पास ले जाते हैं और जो अपने प्रेमी से दस कदम दूरी पर ठिठक कर कहती है 'मेरे आगे बढ़ने की सीमा यहीं तक है। मैं इस वक्त एक जलती हुई मोमबत्ती हूँ। मैं खुद पिघल कर खत्म हो जाऊँगी। प्रेम करने वालों के लिए बहुत ज्यादा नजदीकी अंत का कारण बन जाती है और इसलिए प्रेमियों को एक दूसरे से दूर ही रहना चाहिए। बीमार रहना बेहतर है, बनिस्बत आगे चलकर इलाज की वजह से शर्मिन्दा होने के।' लेखक अशरीरी प्रेम को रोमांचक अनुभूति की तरह प्रतिष्ठापित करते हैं और इस तथ्य से खिन्न भी हैं कि 'रूहानी इश्क' के वे दिन खत्म हो गये। उन्होंने एक बौद्धिक के रूप में प्रेम के 'अध्यात्मिक रूप' के समाप्त होने के कारणों की तलाश की है। उन्होंने लिखा है 'व्यावसायिक व भौतिक मूल्यों के हमारे समाज पर इस तरह हावी हो जाने के कारण वह अब किसी प्रकार की कल्पनात्मकता, काव्यात्मकता, मिथकीयता, रहस्यमयता या आलौकितता के अनुकूल नहीं रह गया है।''

प्रेम के इस अलौकिकता रंजनात्मक रूप पर मुग्ध हुए डॉ. सदाशिव उसके सामंती, पुरुषवादी, विलासिताप्रिय रूप पर विचार करते हुए संकोच करते हैं। इस प्रसंग में उनके इस निष्कर्ष से भी सहमत होना कठिन लगता है कि 'हम अपनी सांस्कृतिक विरासत का वह बहुत सा हिस्सा सदा के लिए खोते जा रहे हैं जो वैचारिक और भावनात्मक स्तर पर आम आदमी को समृद्ध और मूल्यावन बनाए रखता था' लेखक ध्यान से देखें तो पायेंगे कि भारतीय समाज और जीवन में लैला-मजनुओं और शीरीं-फरहादों की ज्यादा भीड़ नहीं है और न विवाहेत्तर खुले प्रेम को सांस्कृतिक श्रेष्टता का प्रतिमान माना गया है।

पहली नज़र में 'मूल्य-संक्रमण के दौर में' पुस्तक परिवर्तन विरोधी लगती है। हजारों वर्षों से पोषित सामाजिक-संस्थाएँ अवमूल्यित होती नजर आती हैं। विकास के प्रतिमान अर्थ और व्यक्ति-क्रेन्द्रित हो रहे हैं। इत्यादि।

लेकिन, दरअसल, सदाशिव परिवर्तन-विरोधी नहीं है। वे उस अव्यस्थित, त्वरित, प्रर्दशनकारी 'बदलाव' के प्रति अपनी नाराज़गी व्यक्त करते हैं जो व्यक्ति और सामाजिक सोच, कर्म और व्यवहार को कुंठित और लालची बनाते हैं। उन्होंने अपने आलेखों को आलोचना के साथ-साथ उन सुझावों और कर्त्तव्यों से समृद्ध किया है जो परिवर्तन को बहुआयामी, समतामूलक और राष्ट्रहित का बनाते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुझे सदाशिव उन दिनों की भी याद दिलाते हैं जब लेखकगण कविता, कहानी, निबन्ध लिखने के साथ-साथ अपने पास-पड़ोस के अच्छे-बुरे परिवर्तनों, घटनाक्रमों पर लिखते सामाजिक चिन्ताओं से जुड़ते थे। समाज की चिन्ताएँ, साहित्य की चिंताएँ भी होती थीं।

बोधि प्रकाशन ने पुस्तक को आकर्षक बनाने की कोशिश में सफलता पाई है।

पुस्तक : मूल्य संस्करण के दौर में (निबंध संग्रह)
लेखक : सदाशिव क्षोत्रिय
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन,जयपुर
मूल्य : 100/-

30, अहिंसापुरी
उदयपुर

शैलेय की कविता-यात्रा का दूसरा चरण

● कपिलेश भोज

प्रत्येक सजग रचनाकार देर-सबेर अपने समय और समाज के प्रति प्रतीयमान यथार्थ को भेदकर उसके उद्गम-स्थल तक पहुँचने की दुर्गम व श्रमसाध्य यात्रा पर निकलता ही है। ...मंजिल तक पहुँचने के लिए उसे न केवल अपने अनुभव-संसार को अतिक्रमित कर विविधता और जटिलता से परिपूर्ण व्यापक जीवन का गहरा साक्षात्कार करना पड़ता है, बल्कि उस यथार्थ को निर्मित करने वाले कारकों से भी मुठभेड़ करनी होती है; क्योंकि यदि यथार्थ पीड़ादायक और असहनीय है तो वह केवल उससे साक्षात्कार कर उसे कविता में पुनर्सृजित करने तक ही सीमित नहीं रहता वरन् उसे बदलने के उपक्रम में भी सहभागी बनता है। किसी भी समय के सजग रचनाकार का रास्ता इसी बीहड़ रचनात्मक संघर्ष से होकर गुजरता है...।

इस दृष्टि से 2008 में प्रकाशित 'या' के पश्चात चर्चित युवा कवि शैलेय के 2010 में आए दूसरे कविता-संग्रह 'तो' की कविताओं को देखें तो वे अपने चार आयामों को उजागर करती हुई दिखाई देती हैं।

इन कविताओं का पहला आयाम रोग, दर्द, चीख, बाढ़, सूखा, अकाल, भुखमरी, बेरोजगारी, शोषण, हत्या, बलात्कार, लूटपाट-भ्रष्टाचार, गाली-गलौच, जूतमपैजार, भ्रूण-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हत्या, भूख से होती मौतों, किसानों द्वारा की जारी आत्महत्याओं, नफरत, मनुष्यता के क्षरण और साँसत से भरी जिन्दगी के बीच इन सबसे उबरने की तड़प और तीव्र प्रश्नाकूलता से आप्लावित है–

भय जब मेरी नींद ही चुरा ले गया...
सलाह–मशविरे को दर–दर गया
पर/मेरी तरह ही
और तमाम मित्र भी थके–हारे निकले
जाने क्या है कि
घर
दफ्तर
बाजार
समाज
कहीं भी कोई भी सही आदमी
स्वस्थ नहीं है
मेरा अवसाद और भी गहरा गया...
हरियाली उम्र में
कोई भी सूख जाना नहीं चाहेगा
प्लीज! क्या आप कुछ सहायता करेंगे
कि
कहाँ से आदमी को लगते हैं रोग?
कहाँ से मिलती है कोई खुशी?
कि
नींद में गहरे धँसे इस काँटे को
आखिर
किन आँखों से निकाला जा सकता है?

(आँख)

कविताओं का दूसरा आयाम वह है, जहाँ कवि ईमानदारी पूर्वक आत्मालोचन करता हुआ दिखाई पड़ाई–

अपने वक्त के राक्षसों के खिलाफ
मैं कोई गदा नहीं उठा पा रहा हूँ

(आँख)

ये किस करवट
बीत रहा है मेरा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

युग?
हालाँकि
बाढ़, सूखा और अकाल ही नहीं
भुखमरी, बेरोजगारी और शोषण ही नहीं
लूटपाट, बलात्कार और हत्याएँ ही नहीं
ईश्वर के जाप तक पर
मैं तिलमिला उठता हूँ लेकिन
कुछ देर बाद ही
उदासी में ढलकर जैसे सब कुछ शांत हो जाता है
क्या यह
पेट भरे होने का सबब है?
क्या संवेदना सूख गई है??
भीतर का कवि क्या मर गया है?
आखिर
किस दुर्घटना का शिकार मैं
इस तरह...???

(दुर्घटना)

अपने तीसरे आयाम के साथ कविताएँ उस जगह जाकर टिकती हैं, जहाँ कवि यथास्थिति को अस्वीकार करते हुए उम्मीदों के उजाले में संघर्ष की दिशा में कदम बढ़ाने की तैयारी करना चाहता है-

कभी न कभी तो संशय छटेंगे/नये विमर्श में/तमाम-तमाम साजिशों के खिलाफ/समूची दुनिया के आम सरल जन/साथ-साथ खड़े होंगे/नये समय का नया फलसफा रचेंगे...।

(कविता)

'पहाड़-2' उस चौथे आयाम की झलक प्रस्तुत करने वाली कविता है, जिसमें कवि अपने समय के खौफनाक सच को अनावृत करने में सफल हुआ है।

अखबार कह रहे हैं कि/हिरन-शेर-सारस-गौरैया ही नहीं/हर सरल आँख/हर स्वाभिमानी सीना/निशाने पर दनादन चढ़ाये जा रहे हैं/बढ़ रहे हैं तो/सिर्फ साँप-मगरमच्छ-ऊदबिलाव/दुनिया को /एक ही साँस में चबा जाने की मंशा वाले/ऑक्टोपस अनगिनत.../यानी/जो कुछ भी उज्ज्वल है/काली निगाहें/सब बँजराती जा रही हैं...

आज के इस कठिन दौर में मनुष्यता की तलाश और अपने भीतर के मनुष्य को बचाये रखने का अंतर्संघर्ष इन पंक्तियों में मुखरित हुआ है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खुल चुका है अब विश्व बाजार
कि रस-राग-रंग ही नहीं
अंग-अंग खरीदा जा सकता है
सारा संसार
सबसे बड़ी बोली का
सर्वाधिकार...
सोच रहा हूँ
बिना बिके अब जिया नहीं जा सकता
पर
बिक गया तो फिर आदमी कहाँ रहा।

(आदमी-2)

ये कविताएँ इस बात का भी साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं कि कवि ने अपने पहले कविता-संग्रह से कुछ कदम आगे की यात्रा तय की है। अपने अनुभव-संसार को अतिक्रमित करते हुए वह आज के केन्द्रीय यथार्थ के और निकट पहुँचा है। ...लेकिन मौजूदा कष्टदायक जिन्दगी को बदल डालने की जद्दोजहद में जूझ रहा मेहनतकश जन-समुदाय अपनी पूरी संश्लिष्टता के साथ अभी उसकी कविताओं में पुनर्सृजित नहीं हो सका है। ...शायद इसीलिए वह केवल लड़ने का आह्वान करने तक सीमित होकर रह जाता है-

लड़-लड़
लड़-लड़
जब तक पतझड़
नये आयेंगे बसंत।

(मंत्र)

कुछ कविताओं में यथार्थ के सरलीकरण और विरुपीकरण की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है, जो उन्हें अमूर्त और कमजोर बनाती है, मसलन-

एक अ-दगा गोल है
दिल्ली
अभी भी...
काश! इस देश को खेलना आता।

(दिल्ली-3)

दिल्ली-दिल्ली
दिल्ली-दिल्ली
दिल्ली-दिल्ली
काली-बिल्ली

(दिल्ली-4)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संसद है/या काली जादू की खोह/अच्छा ही हुआ/जो यहाँ जरूर आया/वरना/पूरा देश कहाँ समझ पाता मैं?/गुजर गया होता/अधबीच ही कहीं/काले जादू की छाया में सूखता हुआ...

(पहाड़-3)

आजादी की लड़ाई में
लोगों ने मिल-जुलकर रावण क्या मारा और
विभीषण के हाथ सत्ता क्या लगी
ऐसा डण्डीमार कारोबारी निकला कि
अच्छी-खासी जन्मभूमि
अमेरिका की रखैल हो गई है
शर्म! शर्म!
थू! थू!
तेरी जात को विभीषण...।

(अस्सी बरस की ये आँखें और मैं)

सोचने की बात है कि दिल्ली को-भले ही प्रतीकात्मक रूप में ही सही-काली बिल्ली और अ-दगा गोल तथा संसद को काले जादू की खोह कहने से यथार्थ की क्या और कैसी समझदारी बन सकती है। ...और जहाँ तक आजादी की लड़ाई में लोगों द्वारा मिल-जुलकर रावण को मारे जाने का सवाल है तो 'रावण' मरा ही कब? ...इसी तरह 'विभीषण' की जात को शर्म-शर्म और थू! थू! कहने से कवि का आक्रोश तो जरूर प्रकट होता है लेकिन इससे व्यवस्था के जनविरोधी चरित्र का कोई खुलासा नहीं होता।

बहरहाल, निष्कर्षतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शैलेय अपनी कविता-यात्रा के इस दूसरे चरण में प्रतीयमान यथार्थ की तह तक पैठने की दिशा में कुछ कदम आगे बढ़े हैं और उनकी यह अग्रगामी गति इस बात के लिए आश्वस्त करती हैं कि वे अपनी आगामी कविताओं में रचनात्मक ऊँचाई हासिल करेंगे।

पुस्तक : तो

कवि : शैलेय

प्रकाशक : परिकल्पना प्रकाशन, डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020

मूल्य : 75/-

स्थान एवं पो. सोमेश्वर

अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) 263637

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भावनाओं की सान्द्रता में उभरे महीन चित्र

● रमेश खत्री

कभी गेटे ने कहा था, 'जीवन का वृक्ष हमेशा हरा होता है।' ठीक इसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि कविता का वृक्ष भी कभी नहीं सूखेगा, क्योंकि कविता में जीवन और प्रकृति साँसें ले रही होती है। वही उर्जा नसों में दौड़ रही होती है और जड़ों को सींच रही होती है। यह अलग बात है कि वर्तमान समय के खूनी पंजों ने अपनी पूरी ताकत से कविता के खिलाफ षड्यंत्र रचने की कार्यवाही आरंभ कर दी है तो भी अनुभव की सांद्रता और भावनाओं का खिलंदड़ापन हमेशा कविता को पुर्नर्जीवित करता रहता है। यही कारण है कि वह विविध रूपाकारों में हमारे सम्मुख आती है और अपने रूप, रस और गंध से पूरे वातावरण को कवितामय बना देती है। यही कविता की ताकत भी है और उसका प्रमुख औजार भी। वर्तमान समय की जटिलताओं और बनैलेपन को जीवन की सत्यता में निथारकर अनुभव के जो मनके हमारे हाथ लगते हैं वही अभिव्यक्ति की आँच में तपकर कुंदन से निखर जाते हैं। और लम्बे समय तक कौंचते भी है।

कपिलेश भोज का कविता संग्रह 'यह जो वक्त है' इसमें सग्रहित कतिवाओं से झाँकता समय अपने वरकों में हमारे सम्मुख आभा बिखेरता नजर आता है। इसमें संग्रहित कुल जमा 54 कविताएँ चार खण्डों में विभक्त है। और अपने होने को प्रमाणित करती है। कपिलेश ने खुली आँखों से सच को पकड़ने का प्रयास किया है, जिसका प्रमाण है ये कविताएँ, 'तुम्हारी कविताओं में मित्र, मैं तलाशता हूँ आदमी, मगर कहीं पता नहीं चलता उसका....मुँडेर पर बैठी एक चिड़िया और पिघलती हुई जादुई चाँदनी, नजर नहीं आता सिर्फ आदमी।' वर्तमान समय की आपाधापी में यदि कुछ खोया है तो वह आदमी ही है। कवि की नजर उसे बखूबी पहचानती है। और किस तरह से आदमी इस आपाधापी के बीच अपने अंदर उतरता जा रहा है और मूक होती जा रही है उसकी जुबान वह अपनी आँखें टमटमाते हुए बस इधर उधर देखता भर है जिसे कवि अपनी लेखनी में पकड़ने की कोषिष करता नजर आता है, 'देखना चाहता हूँ मैं कहे और अनकहे के बीच कितना खोज पाती हो तुम चीजों को, आखिर मुझे भी तो जाननी है तुम्हारी चाहत और परखनी है तुम्हारी संवेदनाओं की गहराई।'

इस आपाधापी में यदि कुछ खो रहा है तो वह है अपनापन और अपनेपन की सौंधी महक जिसे खोजते हुए हम अपने घर से काफी दूर निकल आये हैं और जब हमें अपनेपन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
की जरा भी महक महसूस होती है, तो हम वर्गातिरेक के चलते उससे भी जी चुराने लगते हैं। ये किस तरह का चक्रव्यूह हमारे आस पास तना हुआ है, 'देश के दूरदराज इलाकों के गँवार लोग, बसों में टकराते हैं जब हमसे, तो उन्हें हिकारत से देखते हुए हम बिचका लेते हैं मुँह, हँसते हैं और बुदबुदाते हैं उनकी मुर्खताओं पर 'आ जाते हैं न जाने किन जंगलों से'...विलुप्त होती हँसी की फुहार यदि कहीं किसी के चेहरे पर दिखाई देती है तो कवि को झरने की बरबस याद आ जाती है, 'हँसी क्या है तुम्हारी, पहाड़ की कोख से फूटता हुआ झरना है कोई या गरमी की तपती दुपहरी में घनी पत्तियों से ढँके पेड़ की छाँव है।'

कपिलेश ने मानवीय संवेदनाओं को और प्रकृति को इन कविताओं में एकमेव करने का प्रयास किया है। और साथ ही उस जीजिविषा को भी विवेचित करने का भी जो गाँव को छोड़ते वक्त हम सभी की धड़कनों में धड़कती थी और जिसे हमने बिसरा दिया शहर की आबोहवा में साँस लेते ही, 'वे लादकर लाये थे अपने जमाने के युवाओं की अशांति उनके विभ्रम और उनके दर्द, उधेड़ रहे थे वे उन्हें ही और बनाने की कोशिश में थे एक पगडण्डी...बाहर थी शान्ति लेकिन वे जूझ रहे थे अपने जमाने की अशान्ति के झंझावात से...' और जब अन्दर उतरते हैं तो पाते हैं, 'बाहर ही नहीं मेरे भीतर भी है पहाड़ और नदियाँ, समन्दर और रेतीले ढूह...और इन सबके बीच बहता हुआ जीवन...भूख,ठण्ड और गर्मी से दम तोड़ते रिरियाते और लड़ते हुए भी...।' दरअसल यह लड़ाई अपने आप से भी है और हमारे आस पास पसरे समय के उस खूनी शजर से भी है जो अपनी लपलपाती जीभ से निगल रहा है लगातार वर्तमान के सपनीले रास्तों को जोड़ते पुल की रौशनी, जो हमारी भावनाओं की थाह लेते निकल जाती उस मंजिल की ओर जिसके तार जीवन की आपाधापी से जुड़े हैं, 'युवक लिखने लगा प्रेम की तड़पा देने वाली अनुभूतियों पर कविताएँ, युवती ने गद्द होकर कहा, 'लाजवाब है तुम्हारी प्रेम कविताएँ लेकिन वह पकड़ नहीं पाई कविताओं में पार्श्वसंगीत की तरह छाई इस अनुगूँज को कि मैं करने लगा हूँ तुम्हें अपने दिल की गहराई से प्यार फिर अजीब बात यह हुई कि युवती जितने ही मुक्त भाव से करती गयी प्रशंसा उसकी कविताओं की वह असतुंष्टि और उलझन के भँवर में डूबा होता गया उससे उतना ही दूर...बहुत दूर।' और जब हम पलटकर देखते है, तो हमारे मुँह से यही निकल पाता है, 'उस जीवन की रचना में साथ होते तुम भी हमारे अपनी कविताओं के साथ जिसका सपना सुना है गूँजता है तुम्हारी कविताओं में बारम्बार...।' कपिलेश जिन सपनों को पकड़ने के लिये लपकते हैं वे हैं, 'हम दोनों को जोड़ती है यह नदी, तुम तक पहुँचाती है यह मेरा पैगाम....फसलों को लहलहाती धरती और प्यासे कंठों को सींचती हहराती रहे, बहती रहे, सरसराती हवा के साथ....।'

दरअसल, कपिलेश भोज के इस कविता संग्रह, 'यह जो वक्त है' में उतराखण्ड के पहाड़ों से उतरकर आई ताज़ा धूप, सरसराती हवा और मिट्टी की सौंधी महक को आसानी से पकड़ा जा सकता है । क्योंकि वे अपनी जड़ों को कविताओं का आधार बनाते दिखाई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
देते हैं। और जीवन के उन संघर्षों की ओर इशारा करते हैं जो सहजता से पसरे हैं ऋतुओं की तरह जीवन में। वे ऊर्जा ग्रहण करते है प्रकृति से और अपनी जड़ों को सम्पृक्त करते नज़र आते हैं इन कविताओं में ।

ठीक इसी तरह 'पत्थर में बंद' आदमी राजेन्द्र नागदेव का छठा कविता संग्रह है । इसमें उनकी 52 कविताएँ सग्रहित है जो उनकी कविता यात्रा को एक मुकाम पर पहुँचाती है । इस संग्रह की कविताओं में एक अलग तरह की आवाज़ को आसानी से पकड़ा जा सकता है । जो सोंधी महक अपने आस पास महसूस करते हैं वह, 'मैं चूल्हे वाली जमीन पर ढूँढना चाहता हूँ, रोटियों के निशान और आग द्वारा छोड़ा गया कालापन, मैं मूर्गे के पंख और तोते के पिंजड़े की सलाखें ढूँढना चाहता हूँ, मैं उन सब की उपस्थिति में अब भी वहाँ महसूसना चाहता हूँ....उस घर को छोड़कर कहीं निकल गये होंगे...अपने अंदर खोजता हूँ।' नागदेव की कविताओं में मालवा की सौंधी महक को आसानी से पकड़ा जा सकता है, 'एक औरत थी, चिथड़ों में घुमती थी सड़क पर, और कूड़े के ढेर को टहनी से कुरेदती रहती थी दिनभर, बासी रोटियों और सब्जियों की खोज में...उसने गुड़िया को उठा लिया, फिर गुड़िया की फ्रॉक को ठीक किया कि कहीं...सोई हुई गुड़िया की आँख न खुल जाये वह ताकती रही कुछ पल इधर उधर, ढूँढ रही होगी कदाचित गुड़िया की उखड़ी हुई बाँह, फ्रि जोर से उसने छाती से चिपका लिया गुड़िया को और निकल गई कहीं...।' कवि अपनी कविताओं में तलाशता है उन चित्रों को जो अतीत की कंदरा में लगातार कौंधता है, 'अब तक समय का बदरंग फेटो जेब में सम्हाले, निरर्थक भटक रहा हूँ उसकी खोज में, मैं आया था समय की पुरानी सारंगी पर दोस्तों के साथ बैठे पुरातन राग सुनने सुनाने, मगर मकानों से भरा मरुस्थल मिला यहाँ जलता हुआ आकाश मिला, सूखी हुई नदी मिली, सारंगी के टूटे हुए तार मिले..'

नागदेव की कविताओं में एक अलग तरह की बेचैनी को आसानी से पकड़ा जा सकता है और वह बेचैनी है अपनों से जुदा होने की और उन्हें लगातार खोजते रहने की, 'कल सुबह कोई बच्चा ठोकर से कटोरे को उछालेगा गेंद की तरह, और अन्दर बसा एक घर फट कर हवा में बिखर जायेगा, बहुत खाली खाली लगेगा फुटपाथ कल के बाद आनेवाले कई दिनों तक।' इसे दूसरी तरह से पकड़ने की कोशिश करते हैं तो पाते हैं, 'एक संशय लगातार रहता है जीवित कि घर के अंदर समाप्त होगी यात्रा या देहरी के बाहर ही कहीं, कुछ गज पहले रूक जायेंगे पाँव सदा के लिये? कुछ भी, कभी भी, इन दिनों संभव है इस शहर में बहुत लंबे हो गये हैं रास्तें और यहाँ सहज नहीं है किसी का घर से निकलना और साँझ ढले तक घर लौट आना।' दरअसल, इस भागती दौड़ती जिन्दगी में यदि कुछ छीजा है तो वह है आत्मविश्वास और कवि उसी आत्मविश्वास को पकड़ने के लिये लगातार प्रयास करता नजर आता है अपनी कविताओं की ढाल लेकर, 'घर और पाठशाला के बीच कहाँ अटक गये बच्चे? बहुत कुछ अटक जाता है बहुत कुछ भटक जाता है बीच में ही कहीं सड़क जब बीमार होती है इतनी कि उस पर चलने का अर्थ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
चलना कम और रुकना अधिक होता है।' या कि, 'जिन लोगों के यत्न से सहेजे सपने खो जाते हैं, वे लोग देर सबेर विकल्पहीन विवशता में, पागलखाने तक अपने आप चले आते हैं।' नागदेव जब कविताओं की सीढ़ियों पर पैर रखते हैं तो उन्हें हाशिये के लोगों की चिन्ता सताने लगती है और वे अपनी कलम में स्याही की जगह भर लेते हैं उनकी पीड़ाएँ, 'बूढ़ों को इन दिनों कहीं से कोई आवाज नहीं देता, कुछ है जो निरंतर उन्हें याद रखते हैं, वे, जिनका सत्यापन पुलिस फाइल में नहीं होता, वे, जो सम्पूर्ण एकाग्रता और निष्ठा से बनाते रहते हैं, बूढ़ी गर्दनों के नाप की तेज धार वाली छुरियाँ।'....'जब भी छोड़ेंगे पूरे के पूरे नहीं जाएँगे हम, कुछ न कुछ हमारा छूट जायेगा यहाँ, और अक्सर बहुत दूर से मुड़ मुड़कर देखते रहेंगे, अपने उस छूटे हुए कुछ को' इसी कुछ की तलाश में तो हम सब भटक रहे सदियों से और जिसे खोजना चाहते हैं वह झीने परदे की ओट में छुपा लगातार ललचाता रहता है, 'हत्यारा घर के पिछवाड़े तलवार को धो पोंछकर चमका रहा है, उसने तलवार पर कल के लिये लिख दिया है एक बच्चे का नाम, उस बच्चे का जिसकी थकी हुई आवाज खामोशी को हिलाती हुई रह रहकर आ जाती है वह बुला रहा है बहुत देर से पड़ोस के घर में अपनी मरी हुई माँ को...'

कहना न होगा राजेन्द्र नागदेव कविता के जिस स्ट्रक्चर को गढ़ते हैं वह वर्तमान समय की आपाधापी ने कुछ अलग तेवर लिये हुए है और हमारे सम्मुख उकेरता है वो रंग जो सम्वेदना के धरातल पर काफी चटक है, 'औरत शायद उड़ना चाहती थी, और नीचे सड़क पर भीड़ की साँस रुकी हुई थी, मुँडेर पर चिड़िया सच में पंख न खोल ले....कौन सा पिंजड़ा तोड़कर आई है...वह पिंजड़ा था कि उसका घर ही था, वह अब खुली हवा में है या और विशाल पिंजड़े में, इस पिंजड़े के अंदर और कितने पिंजड़े होंगे, उसके लिये मुँह खोले...' जब नागदेव शब्दों की कश्ती लेकर भावनाओं की नदी में उतरते हैं तो जो चित्र निथरकर आते हैं वे उस विद्रूपता की ओर इशारा करते हैं जो हमारे आस पास पसरा है और जिस पर अभी तक भी हमारी नजर जा नहीं पाई, 'पूछो इससे, कहीं यह मनुष्यों की बस्ती में तो नहीं चली गई थी!'

नि:संदेह समीक्ष्य दोनों कविता संग्रह अलग अलग समय में रचे गये हों किन्तु इनकी सान्द्रता इतनी महीन और आपस में गुँथी हुई है कि जो चित्र उभरकर आते हैं वे एकमेव नजर आते हैं। ये दोनों कविता संग्रह इसलिये भी उल्लेखनीय हैं कि गहरी से गहरी बात भी आम बोलचाल की भाषा में कह देते हैं, जो सहज ही ग्राह्य है। निस्संदेह इन संग्रहों की कविताएँ पाठकों के लिए ग्राह्य तो होंगी ही और बाज दफे काम भी आयेंगी।

यह जो वक्त है/कपिलेश भोज/परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ/मूल्य 50 रुपये/संस्करण 2010

पत्थर में बंद आदमी/राजेन्द्र नागदेव/राजसूर्य प्रकाशन, दिल्ली/मूल्य 150 रुपये/संस्करण 2010

53/17, प्रतापनगर, जयपुर-302033

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अज्ञेय का विशाल रचनाकर्म

'शब्द संसार' और 'मॉर्निंग न्यूज़', जयपुर की सहभागिता से राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' पर सूचना केन्द्र, राजस्थान सरकार में 30 व 31 को आयोजित दो दिवसीय लेखक शिविर में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए लब्धप्रष्ठि समालोचक एवं एवं प्रखर चिंतक डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने कहा कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अज्ञेय का सृजन और चिंतन अपनी अद्वितीय विचार-दीप्ति के कारण अप्रतिम महत्व रखता है।

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने कहा कि वस्तुत: अज्ञेय प्रश्नाकूल कवि हैं और पश्चिमी आतंक से सर्वथा मुक्त भी। इसलिए अज्ञेय आधुनिक भारतीय का उजला पक्ष प्रस्तुत करते हुए वे स्वाधीनता को मनुष्य का सबसे बड़ा मूल्य मानते थे।

प्रो. डॉ. रमेश रावत ने कहा कि क्या आवश्यकता है कि हम अज्ञेय साहित्य को शुद्ध भारतीय साहित्य ही सिद्ध करें और उन पर पश्चात्य प्रभाव का निषेध करें। पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण करना न तो कोई अपराध है और न उससे अज्ञेय की महत्ता को ही कम करने का प्रयास है।

उद्घाटन सत्र में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए विख्यात साहित्यकार डॉ. हेतु भारद्वाज ने कहा कि किसी भी रचनाकार की महत्ता का प्रतिपादन उसके उस रचनाकर्म से ही होता है जिसका कद समय के साथ बढ़ता चला जाता हैं। प्रेमचंद के 'गोदान' के बाद 'शेखर : एक जीवनी' हिन्दी का ऐसा उपन्यास है, जिस पर सर्वाधिक विवाद हुआ है, लेकिन कथ्य और शिल्प दोनों की नवीनता के कारण यह कृति हिन्दी उपन्यासों में मील का पत्थर सिद्ध हुई है।

अपने अध्यक्षीय भाषण में साहित्यकार और मॉर्निंग न्यूज़ के मुख्य कार्यकारी निदेशक, डॉ. अमरसिंह राठौड़ ने कहा कि सर्जनात्मक व्यक्तित्व मूल: स्वाधीन होता है और अज्ञेय की यही दृष्टि उनके सम्पूर्ण साहित्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र मिल जाती है।

दो दिवसीय लेखक शिविर के अंत में राजस्थान साहित्य अकादमी के प्रतिनिधि रामदयाल मेहरा ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

प्रस्तुति : श्रीकृष्ण शर्मा

अध्यक्ष, शब्द संसार, गीतांजलि, 26, मंगल मार्ग, बापू नगर, जयपुर-302015

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्र-संवाद

राजाराम भादू, जयपुर

आपका आभारी हूं कि आप मुझे 'अक्सर' नियमित रूप से भेज रहे हैं। वैसे सामान्य चलन तो यह है कि जिस अंक में आपका भी कुछ छपा हो तो उस अंक की प्रतिक्रिया नहीं भेजी जाती। मुझे इस चलन से विचलन इसलिए करना पड़ा है कि कुछ बातें मुझे उद्वैलित कर रही हैं।

पहली बात आपके संपादकीय पर। आपके संपादकीय लेखों का खुलापन और साफगोई प्रभावित करती है। आरक्षण पर आपने ऐसे समय में बात की है, जबकि उस पर आलोचनात्मक टिप्पणी करना खतरनाक माना जाता है, विशेषकर बौद्धिक तबके ने जब इस मुद्दे पर एक चालाक चुप्पी साध रखी हो। मुझे लगता है कि 'अक्सर' में असल बहस का मुद्दा तो यही होना चाहिए। मेरा मानना है कि हमें इस पर सामाजिक न्याय की अवधारणा के समग्र परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्रीय और विकास विमर्श के प्रतिमानों के साथ बात करनी चाहिए।

चूंकि आपने 'आरक्षण' फिल्म के संदर्भ में बात शुरू की थी लेकिन संवाद के आगे बढ़ते ही प्रसंग कहीं पृष्ठभूमि में चला गया। इस संदर्भ में चर्चा के तीन आयाम खुलते हैं। एक फिल्म को लेकर जो विवाद छिड़ा। फिल्म अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है और इधर हो हल्ला भी सबसे ज्यादा इसी माध्यम को लेकर है। जिस तरह आस्था और संवेदनशीलता के नाम पर फिल्म प्रदर्शनों के समक्ष रुकावटें डाली जाती हैं, उसे तो लगता है कि हमारा दृष्टिकोण और अधिक दकियानूसी और असहिष्णु होता जा रहा है इसी अनुपात में सेंसर की समानान्तर सत्ताएँ शक्तिशाली होती गयी हैं। विडम्बना यह है कि अब तो फिल्म देखे बिना ही उस पर फतवे जारी कर दिए जाते हैं। इसकी परिणति 'आरक्षण' के निर्देशक प्रकाश झा की उस हताशा भरी उक्ति में जाहिर होती है जिसमें वे कहते हैं कि एक अकेला मैं ही ऐसी फिल्में बना रहा था। ऐसे हालात में आगे ऐसी फिल्में बनाने की बेवकूफी क्यों करूँगा। दुर्भाग्य की बात यह है कि 'आरक्षण' फिल्म पर उठे बवाल को अभिव्यक्ति की आजादी से जोड़कर देखने और इस पर प्रतिवाद दर्ज कराने में बौद्धिक तबके ने भी गंभीर कोताही बरती।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूसरा आयाम फिल्म की विषयवस्तु है, जिसमें आरक्षण से उत्पन्न प्रतिस्पर्धा तनाव और द्वंद्व की तुलना में निजी कोचिंग संस्थानों के कारोबार का सच ज्यादा प्रभावी तरीके से उजागर किया गया है। एक हद तक यह वास्तविकता है कि गरीब तबके के लिए आरक्षण करीबन बेमानी हो गया है क्योंकि महँगे कोचिंग केंद्रों का खर्च ये तबका वहन नहीं कर सकता और इसके बिना प्रतिस्पर्धा में टिके रहना उसके लिए संभव नहीं है। लेकिन आरक्षित सम्पन्न तबके (क्रीमी लेयर) के लिए अभी भी यह वरदान है क्योंकि कोचिंग केंद्रों की सेवाएँ उसके लिए सहज सुलभ हैं। फिल्म इस सच्चाई को उद्‌घाटित नहीं करती और खोखले आदर्शवाद की ओर मुड़ जाती है।

आपका संपादकीय इस प्रसंग का तीसरा आयाम है। कहना यही है कि यदि पहले आयाम भी आपके विश्लेषण के दायरे में आते तो आपके तर्काधारों की पूर्वपीठिका ज्यादा प्रभावशाली हो सकती थी।

'अक्सर' के इस अंक में भी पूर्व की भांति काफी चीजें विचारणीय हैं। अज्ञेय पर छिड़ी बहस पर रमेश रावत की समाहार परक टिप्पणी तार्किक विश्लेषणपरक है। किंतु अज्ञेय के अवदान को कुछ कम करके आँका गया है, जैसे उनकी कहानियों का तो कोई जिक्र ही नहीं है। 'दिनमान' की अहमियत हिन्दी पत्रकारिता में ऐतिहासिक और अनेकायामी है।

विनोद शाही के चिंतन का अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य मुकम्मिल रूप से सामने नहीं आता। इसलिए ये विशृंखलित और कई बार अंतर्विरोधपूर्ण लगता है। रामशरण जोशी के धारावाहिक (अक्सर में प्रकाशित) लेख लगता नहीं कि उन्होंने ही लिखे हैं। उन्हें अपने विगत लेखन को याद करना चाहिए। माधव हाड़ा के समीक्षा लेख का शीर्षक नकारात्मक अर्थ देता है, जबकि समीक्षा का रुख भिन्न है।

अब आपके पास संपादन के लिए एक अच्छी टीम है फिर भी लगभग हर लेख में गंभीर गलतियाँ छूटी हुई हैं। कई बार इनसे अनर्थ हो सकता है। अंदर के कवर पर छपी कविता 'शक्तिशाली' के कवि का नाम नहीं छपा है।

शिवरतन थानवी, फलौदी

जुलाई–सितम्बर–2011 'अक्सर' के अंक का संपादकीय पढ़ा। बहुत सही है समस्या का निरुपण और समाधान का विश्लेषण–विवेचन तथा सुझाव भी अच्छा है।

एक काम आप और कर सकते थे–करना जरूरी है। फिर कभी बाद में भी यह काम कर सकते हैं, एक नए संपादकीय में।

काम यह जरूरी है कि 'आरक्षण' फिल्म का कथ्य भी पाठकों को बताकर यह भी ठीक से समझाया जाना चाहिए कि इसकी प्रस्तुति का अभिप्राय अभिप्रेत अर्थ क्या था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
और इसकी पृष्ठभूमि में जो भी आनंदकुमार 'सुपर-थर्टी' नाम की निष्ठा है, साधना है, सूक्ष्मदृष्टि है और आरक्षण से भी आगे का एक अनुपम दृष्टांत आदर्श है उसे भी सामने लाया जाना चाहिए।

जो देख चुके हैं फिल्म, उनके लिए भी और जिन्होंने नहीं देखी है उनके लिए भी, ऐसा होना जरूरी है। फिल्म देखने से पहले वे आपका यह दूसरा संपादकीय पढ़कर फिल्म देखने को प्रेरित होंगे और फिल्म देखकर पुन: प्रसन्न होंगे, सूचना-समृद्ध होंगे। पहले संपादकीय में आपने लिखा था-'आरक्षण फिल्म' लेकिन पूरे संपादकीय में आरक्षण ही आरक्षण (यथार्थ) था, फिल्म कहीं नहीं थी।

इस फिल्म का आदर्श अंतिम लक्ष्य के रूप में संभतया उसी दिशा का बोध करा रहा है जिस दिशा को 'सुपर-थर्टी' के नाम से भी आनंदकुमार के कार्यक्रम ने देश-विदेश सभी जगह प्रसिद्धि दी है। नेट पर आनंदकुमार की वेबसाइट में उनकी उपलब्धियों का निवारण कभी भी देखा जा सकता है।

फिल्म के संवाद भी चर्चा योग्य हैं। उन पर आपके अगले आलेख में प्रकाश पड़ना चाहिए और फिल्म के अभीष्ट रूपरेखा भी पूरे आकार में पाठकों को बताई जानी चाहिए।

दूसरी बात, इस फिल्म पर रोक लगवाने वालों का रोक लगवाने वालों का तर्क क्या था, वह कथ्य भी पाठकों को नहीं बताया गया। फिर सुप्रीम कोर्ट के फैसले का भी पाठकों को परिचय कराया जाना चाहिए। पक्ष-विपक्ष दोनों की बात सुनें-पढ़ें लोग। तभी 'आरक्षण' फिल्म का अर्थ पाठकों तक पहुँचेगा, जो पहुँचना बहुत जरूरी है। क्या अंश काटे गए और क्या अंश काटे जाने की मांग कहाँ-कहाँ हुई उसका ब्यौरा व विवेचन भी दे सकें तो और उत्तम।

जो हो आपने आधा दायित्व पूरा कर लिया है, आधा पूरा होना अभी बाकी है। पाठकों ने फिल्म देखी जो कुछ समय आई कुछ नहीं आई और अखबारों में 'हो-हल्ले' की तरह-तरह की खबरें भी पढ़ीं जिनसे उनकी उलझन बढ़ी। यह उलझन जरूर दूर होनी चाहिए।

आपके समर्थ हाथों से यह संपन्न हो तो हमें प्रसन्नता होगी। आपने इस संपादकीय में सैद्धांतिक विवेचन तो खूब दिया लेकिन फिल्म सामने नहीं आई और फिल्म का विवाद तो जरा भी सामने नहीं आया। उसे भी सामने लाइए और पूरे परिप्रेक्ष्य, पूरे परिपार्श्व व पूरी पृष्ठभूमि के साथ सामने लाएं तो पाठक आपके आभारी होंगे।

अखिलेश शुक्ल, इटारसी

पत्रिका : अक्सर, अंक : जून, 2011, स्वरूप : त्रैमासिक, संपादक : हेतु भारद्वाज, पृष्ठ : 144, मूल्य : 25 रु. (वार्षिक 100 रु.), ई-मेल : aksar.tramasik@gmail.com,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वेबसाईट : उपलब्ध नहीं, फोन/मोबाइल : 0141-2760160, सम्पर्क : ए-243, त्रिवेणी नगर गोपालपुरा बाईपास, जयपुर-302018 (राज.)

हिंदी साहित्यजगत में प्रतिष्ठित इस पत्रिका के प्रत्येक अंक में नवीनता होती है। इस अंक में भी सार्थक साहित्यिक रचनाओं का प्रकाशन किया गया है। अंक में ख्यात कवि मलय जी की छह कविताएँ मन की गहराइयों में उतरकर बहुत कुछ सोचने के लिए प्रेरित करती हैं। जनोक्ति कवि केदारनाथ अग्रवाल पर रणजीत के आलेख व कवि नंदबाबू की कविताओं पर रामनिहाल गुंजन ने गहरे चिंतन के बाद उत्कृष्ठ लेखन किया है। लक्ष्मण व्यास, मोहम्मद अजहर, लक्ष्मी शर्मा, अरुण कुमार के समीक्षात्मक आलेख सामाजिक व वर्तमान परिवेश के प्रति सचेत रहने का आग्रह करते दिखाई देते हैं। रूपलाल बेदिया की कहानी 'अपेक्षा' की अच्छी शुरुआत के पश्चात लगता है कथाकार ने इसे पूर्ण करने में शीघ्रता की जिससे पाठक इसका रसास्वादन करने में बाधा उत्पन्न हुई है। ओम नागर व निशांत की कविताएँ सामान्य से विशिष्ठ की ओर ले जाती हैं। नंद भारद्वाज, विवेक कुमार मिश्रा, सरसेम गुजराल के समीक्षा आलेख अच्छ बन पड़े हैं व प्रभावित करते हैं। साहित्यिक पुरस्कारों को लेकर ख्यात कवि लेखक गोविंद माथुर का आलेख गहन पड़ताल है जिसे अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। दुर्गाप्रसाद अग्रवाल तथा वरुण कुमार तिवारी द्वारा लिखित पुस्तक समीक्षाएँ इन संग्रहों/पुस्तक को पढ़ने के लिए प्रेरित करने में सफल रही हैं। पत्रिका की अन्य रचनाएँ भी प्रभावित करती हैं। ख्यात प्रगतिवादी लेखक चिंतक स्व. कमला प्रसाद जी पर एकाग्र समीक्षा लेख एक पठनीय रचना है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोविन्द माथुर को आचार्य निरंजननाथ सम्मान

'अक्सर' के सम्पादक तथा हिन्दी के वरिष्ठ कवि गोविन्द माथुर को उनके काव्य-संग्रह 'बची हुई हँसी' पर आचार्य निरंजननाथ सम्मान-2011 को दिये जाने की घोषणा हुई। इस सम्मान में उन्हें इकत्तीस हजार रुपये की राशि, मानपत्र, शॉल आदि भेंट किये जायेंगे। सम्मान समारोह 27 नवम्बर, 2011 को साहित्यिक पत्रिका 'सम्बोधन' (सम्पादक : कमर मेवाड़ी) द्वारा भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर में आयोजित हो रहा है।

इस अवसर पर 'अक्सर' परिवार गोविन्द माथुर को हार्दिक बधाई देता है तथा स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है।

गोविन्द माथुर की साहित्य साधना बराबर सघन और समृद्ध बने, इसी कामना के साथ।

-अक्सर परिवार

•

'इनाम में जूते' कहानी पुरस्कृत

कथा मासिक 'कथादेश' द्वारा आयोजित अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में 'एक और अंतरीप' के सम्पादक अजय अनुरागी को 'इनाम में जूते' कहानी पर द्वितीय पुरस्कार मिला है। इस उपलब्धि के लिए अजय अनुरागी के लिए हार्दिक बधाई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत का सम्पूर्ण राजनीतिक इतिहास-प्रारम्भ से 1950 ई. तक

(नौ जिल्दों में)

सम्पादक : डॉ. शिवकुमार गुप्त

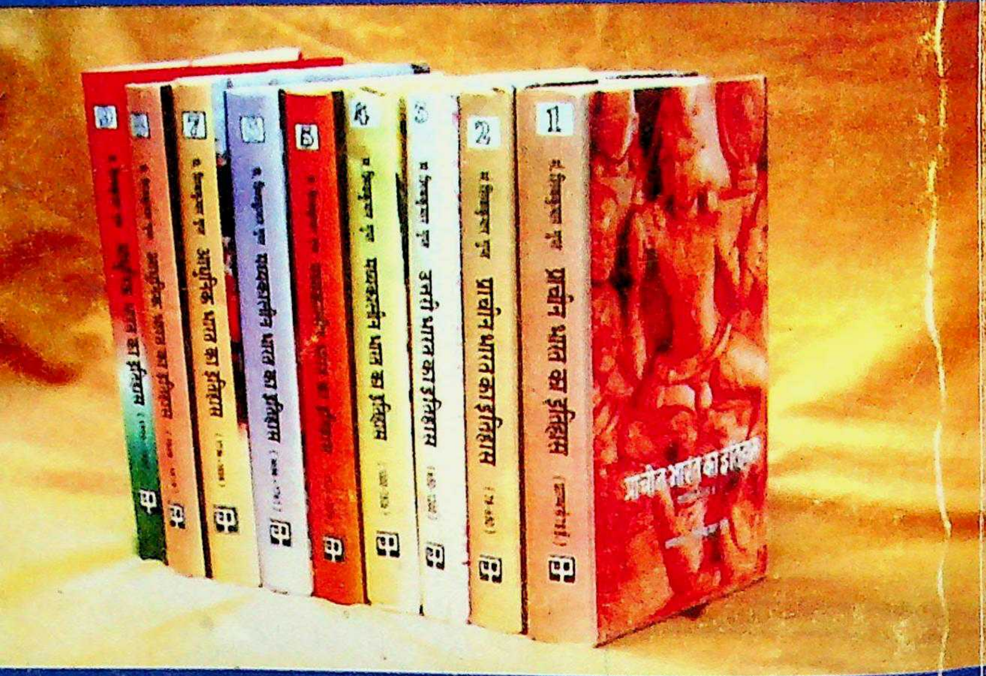

प्रख्यात इतिहासविदों द्वारा लिखित भारत के सम्पूर्ण इतिहास का प्रामाणिक तथा शेधपरक विवेचन

इतिहासवेत्ताओं, शोधार्थियों, विद्यार्थियों तथा इतिहास के गम्भीर पाठकों के लिए पंचशील, जयपुर का गौरवशाली प्रकाशन

प्रत्येक खण्ड का मूल्य 500/- रुपये

पंचशील प्रकाशन

फ़िल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003

फोन : 0141-2315072, 2314172, फैक्स : 5113854

Website : www.panchsheelprakashan.com

e-mail : info@panchsheelprakashan.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant